संघशक्ति

4 अगस्त, 2017

वर्ष : 54 अंक-08

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह वेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़	✍ श्री रेवंतसिंह पाटोदा	06
❍ मैं उसको ढूँढ रहा हूँ-5	✍ श्री महेन्द्रसिंह गूजरावास	07
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	08
❍ उपासना	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	10
❍ प्रताप महान	✍ फारूक अहमद खान	13
❍ विचार-सरिता (द्वाविंश लहरी)	✍ श्री विचारक	17
❍ गुजरात में सोलंकी कुल का शासन	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	19
❍ पुष्कर युद्ध में मेड़तिया राठौड़ राजसिंहजी..	✍ श्री हरीशचन्द्रसिंह आलनियावास	23
❍ अब कहाँ है?	✍ श्री श्यामसिंह छापड़ा	24
❍ चाँग घोड़ी के लिये	✍ स्वामी श्री सच्चिदानन्द	26
❍ भक्त शिरोमणि मीरा बाई	✍ श्री ब्रजराजसिंह राजावत खरेड़ा	30
❍ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

समाज में आक्रोश :

24 जून को अनेक आरोपों व मुकदमों वाला आनन्दपाल पुलिस मुठभेड़ में मारा गया। कुछ मुकदमों में वह बरी हो चुका था, अन्य मुकदमें चल रहे थे। जेल से फरार होने के बाद पुलिस को उसकी तलाश थी और उसे न पकड़ पाने से सरकार की विधानसभा में किरकिरी बार-बार हो रही थी। ये आरोप भी विपक्षी राजनेता लगा रहे थे कि सरकार की शह पर उसे नहीं पकड़ा जा रहा। उसके अनेक साथी पकड़े गए पर वह नहीं पकड़ा जा सका। पुलिस अपनी छवि सुधारने के लिये पूर्ण रूप से सक्रिय थी और परिणामस्वरूप 24 जून को मुठभेड़ हुई।

मुठभेड़ वह होती है जिसमें दूसरा पक्ष भी पुलिस पर आक्रमण करता है। पुलिस ने उसकी मृत्यु की सूचना के साथ मुठभेड़ का खाका भी खींचा। पुलिस द्वारा खींचे गए खाके में कुछ लोगों को कमियाँ नजर आई। संशय और संदेह का माहौल बढता गया। मुठभेड़ में आनन्दपाल की मृत्यु के समाचार के साथ ही एक जाति विशेष के लोगों के ओछी भाषा में निम्न कोटि के बयानों के साथ खुशियाँ मनाने के समाचारों से कुछ युवकों में प्रतिक्रिया हुई और आनन्दपाल के गाँव सांवराद में लोग एकत्रित होने लगे।

मुठभेड़ के तहत सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार जिन निर्देशों की अनुपालना की जानी चाहिए थी, वह नहीं हो रहा था। सांवराद को पुलिस छावनी बना दी गई और वहाँ जाने वाले हर आदमी के साथ अमानवीय व्यवहार हो रहा था। डंडों से पीटना, बाल उखाड़ना, छाती के बाल उखाड़ना आदि कृत्यों के साथ शव के लिये बर्फ तक को न जाने देना, डीपफ्रिज को कब्जे कर थाने में ले जाना, घर के पानी तक को भी गिरा देना जैसे दुर्व्यवहार से लोगों का शक बढने लगा कि यह मुठभेड़ नहीं थी, बल्कि हत्या थी।

पुलिस के इस अमानवीय व्यवहार के खिलाफ सामाजिक संस्थाएँ जुटी और सर्वसमाज संघर्ष समिति का गठन हुआ। समिति के प्रयासों से अमानवीय व्यवहार तो बन्द हुआ पर मुठभेड़ के प्रति बढते शक ने समाज में आक्रोश के बीज बो दिए। शक को दूर करने के लिये निष्पक्ष जाँच की माँग की गई, जो स्थानीय पुलिस की बजाय सी.बी.आई. से किए जाने की माँग रखी गई ताकि सरकार व पुलिस की छवि साफ हो सके। इस माँग को न मानने से मुठभेड़ का फर्जी होने का शक और बढ गया। आक्रोश बढता गया जिसे सोशियल मीडिया ने खूब फैलाया। इसी बीच 12 जुलाई को सांवराद में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन हुआ। उसी बीच वार्ता भी प्रारम्भ हुई। प्रात: 10 बजे से सायं 6 बजे तक लाखों की संख्या में उपस्थित लोग शान्ति से बैठे रहे। वार्ता के परिणामों में देरी हो रही थी। इसी बीच कुछ असामाजिक तत्वों ने सांवराद स्टेशन पर उपद्रव किया और कुछ पटरियाँ उखाड़ दी। पुलिस ने गोलियाँ चलाई। उपद्रवियों ने भी पत्थर फेंके। वार्ता सकारात्मक ढंग से पूर्ण हो रही थी, इससे पूर्व इस घटना ने माहौल बिगाड़ दिया। पुलिस ने अनेक मुकदमे लगा दिए और हुड़दंगी तो भाग छूटे, निर्दोष लोगों को सैंकड़ों की संख्या में पकड़ लिया। संघर्ष समिति के नेताओं के खिलाफ भी खतरनाक धाराओं के मुकदमे लगाए गये।

समाज में लगातार आक्रोश बढता रहा और वह गाँव, ढाणी तक फैल गया। समाज के मंत्रियों व विधायकों ने मुख्यमंत्री जी को अतिशीघ्र शान्ति स्थापना हेतु कदम उठाने का निवेदन किया। विश्व हिन्दू परिषद के अध्यक्ष ने वास्तविक स्थिति का वर्णन कर शीघ्र हल की बात कही। 22 जुलाई को बहुत भारी संख्या में समाज के जयपुर कूच की खबर ने भी दबाव बनाया और वार्ता के दौर चले। 18 जुलाई को अन्तिम वार्ता में उपस्थित सरकारी पूरे दल का रुख सकारात्मक और सहयोगी रहा और सभी मांगें मान ली गई। आंदोलन समाप्त हुआ। *(शेष पृष्ठ 7 पर)*

चलता रहे मेरा संघ

(दंपती शिविर ऋषिकेश में दिनांक 8.3.2010 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा उद्‌बोधित विदाई संदेश का संक्षेप)

माँ गँगा की पावन धरती पर श्री क्षत्रिय युवक संघ के आँगन में हमने कुछ दिन बिताये। देखें तो गफलत में हमारा अब तक का जीवन बीत गया। अधिकांश लोगों के तो जीवन का ढलान चल रहा है। स्पष्ट है कि काल के मुँह में हम भी एक दिन समा जाएंगे।

आज हम शिविर से कूच कर रहे हैं। रात को शिविर अनुभव के बारे में आपके मन की बातें सुनी। इन पाँच दिनों में हम सभी बड़े प्रेम से साथ रहे। छोटे-छोटे परिवारों में अलग-अलग रहने वाले हम लोगों ने यहाँ शिविर में साथ रहकर विराट परिवार का आंशिक रूप देखा। आपको साथ-साथ अनुशासित रूप से सभी व्यवहार करते देखकर यहाँ के लोग प्रसन्न हुए। गंगा माता ने भी प्रसन्नता प्रकट की। इस स्वर्गाश्रम की धरती भी बड़ी प्रसन्न रही। आज हमारी विदाई के समय हमारे हृदय तो कलप ही रहे हैं, इस धरती का भी यही हाल है। गंगा माता की गति भी आज धीमी है।

सब आपको देख रहे हैं किस प्रकार के रंगरेज यहाँ खेलने आए हैं। आप शायद उन्हें भूल जाएंगे, लेकिन यहाँ के पशु-पक्षी भी आपको याद रखेंगे। गीता भवन का यह हाल भी याद करता रहेगा कि प्रात: 4.00 बजे यहाँ जागरण कार्यक्रम होता था। श्री क्षत्रिय युवक संघ आपको प्रात: चार बजे जगाता था। अब घर पर कौन जगाएगा? जो बीज यहाँ डाला गया, वह चार दिन में फल नहीं दे सकता। आप अब संसार में जा रहे हैं। स्वर्गाश्रम से अब नरकाश्रम में जा रहे हैं। वहाँ कुछ सांसारिक मर्यादाएँ हैं, सांसारिक आकर्षण हैं, सांसारिक बन्धन हैं। अंतरिक्ष के देवता भी देख रहे थे आपके यहाँ के जीवन को और अब वे इस प्रस्थान और वियोग की स्थिति को भी देख रहे हैं।

'जीवो रे भाईड़ां जीवो रे' पू. तनसिंहजी आपको आशीर्वाद दे रहे हैं। सुखद जीवन का आशीर्वाद। आप सभी सुखी रहें यही श्री क्षत्रिय युवक संघ की चाह है। सदैव सुखी होने का उद्योग करते रहें। इन दिनों में आपको कुछ अच्छी व मीठी तो कुछ कड़वी बातें कही गई। जो कुछ कहा गया, वह उत्तरदायित्व समझकर कहा गया। जो कहा गया वह मेरा नहीं था, श्री क्षत्रिय युवक संघ का संदेश था।

'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत'-भगवान ने कहा कि जब-जब धर्म की हानि होती है, तब मैं आता हूँ। आज धर्म की बहुत हानि हो रही है। यही संघ की पीड़ा है, जो परमेश्वर की पीड़ा है। भगवती की पीड़ा है। इसी सम्बन्ध में कुछ पारिवारिक, सामाजिक, आध्यात्मिक बातें कही गई। हमारी मोटी चमड़ी पर हथोड़े की चोट की गई। अभी हमारे दोष सारे निकले नहीं पर हमने देखना प्रारम्भ किया है।

याद रखें कि यह शरीर मेरा नहीं; पत्नी, पति, बच्चे हमारे नहीं। हमें व्यवहार के लिये ये सब मिले हैं। मैं भगवान का हूँ, ये सब भी भगवान के हैं। इनकी यथायोग्य सेवा करें। एक परमेश्वर अपना है, और कोई नहीं। पू. तनसिंहजी यह सब समझते थे, वे ही कह रहे हैं-सेवा करो, दुख मत दो, सहयोग करो, सद्‌राह बताओ। पत्नी वह, जो पतन से बचाए। वह हमें सौंपी हुई थाती है, पराया धन है, मेहमान है, भगवान की बेटी है। पति पालन करने वाला बने। अपना स्वामित्व मत जमाओ। प्रसन्न रहो।

मेरी वजह से किसी को तकलीफ न हो यह व्यवहार बनायें। हमारी पीड़ा समस्त संसार व प्राणी मात्र के लिये है। अपने आपको भी तकलीफ न दें। किसी को भी तकलीफ देने से भगवान को भी दुख होता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की ओर से सभी को स्थायी आमंत्रण

(शेष पृष्ठ 18 पर)

क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़

– रेवंतसिंह पाटोदा

भगवान श्री कृष्ण ने गीता के अठारहवें अध्याय के तैंयालिसवें श्लोक में क्षत्रिय के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया है –

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

अर्थात् शौर्य (शूरवीरता), तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से पलायन न करना, दानशीलता एवं ईश्वरीय भाव (स्वामिभाव)– ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म व गुण हैं।

मारवाड़ के सालवा गाँव में राव रिणमल जी के पुत्र करण के वंशज आसकरण जी के यहाँ उनकी तीसरी पत्नी नेतकँवर जी भटियाणी के गर्भ से (कुछ इतिहासकार मांगलियाणीजी के गर्भ से उत्पन्न मानते हैं) श्रावण शुक्ला चतुर्दशी संवत 1695, सोमवार तदनुसार 13 अगस्त सन् 1638 को अवतरित हुए दुर्गादास भगवान श्री कृष्ण द्वारा क्षत्रिय की दी गई परिभाषा के पर्याय थे। उन्होंने अपने 80 वर्ष, तीन माह 9 दिन (देहावसान 22 नवम्बर, 1718) के जीवन में संपूर्ण रूप से क्षत्रिय का जीवन जीया और अभी तक ज्ञात इतिहास में मध्यकालीन भारत के इतिहास पुरुषों में वे ऊपर वर्णित गीतोक्त परिभाषा के आदर्श मूर्ति रूप थे।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के एक वरिष्ठ स्वयंसेवक ने एक बार जालोर में आयोजित वीर दुर्गादास राठौड़ की जयंती के अवसर पर अपने उद्‌बोधन में दुर्गादास जी के जीवन एवं क्षत्रिय की गीतोक्त परिभाषा का विवेचन प्रस्तुत किया था। इस आलेख में हम उसी उद्‌बोधन को आधार बनाकर क्रमश: प्रत्येक गुण के संदर्भ में दुर्गादास जी के जीवन को समझने का प्रयास करेंगे।

शौर्य :

शौर्य का अर्थ है शूरवीरता। बलवान शत्रु का न्याययुक्त युद्ध में सामना करने से भय न करना तथा न्याययुक्त युद्ध के लिये सदा ही उत्साहित रहना और युद्ध के समय साहसपूर्वक गंभीरता से लड़ते रहना ही शूरवीरता है। दुर्गादासजी के संपूर्ण जीवन में इस शूरवीरता के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने जीवन में न्याययुक्त संघर्ष में भय को कभी अपने निकट भी फटकने नहीं दिया।

विक्रम संवत 1712 में राईके वाली घटना को एक शूरवीर ही अंजाम दे सकता है और फिर बिना भय के राज दरबार में अपनी न्याय युक्त बात कोई डरपोक व्यक्ति नहीं कह सकता।

मात्र 20 वर्ष की आयु में 16 अप्रेल, 1658 को उज्जैन के दक्षिण–पश्चिम में स्थित धर्मत नामक स्थान पर बादशाह शाहजहाँ की सेना एवं औरंगजेब व मुराद की संयुक्त सेना के बीच हुए युद्ध में शाही सेना की तरफ से महाराजा जसवंतसिंहजी के नेतृत्व में हुए संग्राम में दिखाया गया अद्‌भुत शौर्य दुर्गादासजी की शूरवीरता का आदर्श उदाहरण है। इस युद्ध में उनके एक के बाद एक चार अश्व मारे गये लेकिन वे युद्ध से विरत नहीं हुए और पांचवां घोड़ा लेकर तब तक युद्धरत रहे जब तक कि घायल होकर गिर नहीं गये और उन्हें महाराजा के आदेश पर युद्ध के मैदान से हटा नहीं लिया गया।

28 नवम्बर, 1678 को पेशावर के पूर्णमल बुंदेला के बाग में महाराजा जसवंतसिंहजी के देहावसान के बाद दिल्ली वापसी के समय अटक के हाकिम की बलपूर्वक रोकने की कोशिश दुर्गादासजी के शौर्य के समक्ष असफल हुई और अप्रेल 1679 में यह दल दिल्ली स्थित जोधपुर हवेली पहुँचा।

जोधपुर हवेली खाली करवाने के बाद शिशु राजकुमार एवं विधवा महारानियों को किशनगढ़ के रूपसिंहजी की हवेली में रखा गया। वहाँ से राजकुमार को चालाकी पूर्वक मारवाड़ भेजने के लिये निकालने के बा 16 अप्रेल, 1679 को हुई दिल्ली की लड़ाई में शहर कोतवाल फौलाद खाँ द्वारा बिछाये गये तोपखाने और सेना के घेरे को चीर कर निकलना शौर्य और निडरता के बिना संभव ही नहीं था। इस लड़ाई में काम आने वाले

(शेष पृष्ठ 22 पर)

मैं उसको ढूँढ रहा हूँ-5

- महेन्द्रसिंह गूजरावास

चली वो औरंग ने जब चाल,
बने जो राजकुँवर की ढ़ाल।
ले आये दिल्ली से निकाल,
कहाँ है जोधाणे री जान।।
मैं उसको ढूँढ रहा हूँ।
जौहर औ' शाकों के निशान।
कहाँ है रजपूती वो आन।।
मैं उसको ढूँढ रहा हूँ।

1678...., अफगानिस्तान के जमरुद सैनिक चौकी पर, जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी का निधन, उस समय उनके साथ रह रही दो रानियाँ गर्भ से थी, अत: दोनों रानियों को महाराजा के पार्थिव शरीर के साथ सती होने से रोक दिया गया। फरवरी 1679, लाहौर में दोनों रानियों ने पुत्रों को जन्म दिया, बड़े का अजीतसिंह और छोटे का, जिसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई थी, दलथमन नाम रखे गये।

औरंगजेब ने षड़यंत्र रचा कि जोधपुर के एकमात्र उत्तराधिकारी शिशु अजीतसिंह को मारकर जोधपुर पर कब्जा किया जाए। इसलिए उसने हमदर्दी जताते हुए पूरे राठौड़ी लश्कर को दिल्ली बुलाकर कड़े पहरे में ठाकुर रूपसिंह की हवेली में रखा। दुर्गादास राठौड़ ने औरंगजेब के नापाक इरादों को भाँप लिया और मुकंददास खींची के साथ मिलकर गुप्त योजना बनाई। वेश बदलकर शिशु अजीतसिंह को हवेली से निकाल, शाही लश्कर के घेरे को तोड़ जोधपुर की ओर निकल पड़े। स्व. भँवरसिंह जी बैण्याकाबास ने लिखा है-

अकटल सूं काढ्यो राजकंवर, जोधाणे सबने पहुँचाया।
भाले सूँ बाटी सेक सेक वो दुरगो खेली फाग अठै।।

तीस वर्ष....., संघर्षों के तीस वर्ष, कितनी ही बार शाही लश्कर को छकाया, पहाड़ों, गुफाओं और खोहों को अपना घर बनाया, घोड़े पर सर्दी, गर्मी और बरसातें, घोड़े पर ही दिन और रातें। घोड़े पर ही सोये, भाले की नोंक से खाना पकाया और घोड़े की पीठ पर बैठे-बैठे ही खाना खाया।

आठ पहर चौसठ घड़ी, घुड़लै उपर वास।
सैल अणी सूं सेकतो, बाटी दुरगा दास।।

अनगिनत कष्टों को सहकर, जोधपुर के भावी महाराज का पालन-पोषण किया। लेकिन जब कर्तव्य का आदेश हुआ तो चल पड़े, बणजारे की तरह। जिस मारवाड़ के लिये तीस वर्षों तक खपते रहे उसे छोड़ने में एक पल भी नहीं लगाया। सचमुच...., दुर्गाबाबा आपका तप, तपस्वियों के तप से भी कहीं आगे हैं। कहीं जोधपुर में गृह युद्ध जैसी कोई स्थिति न बन जाये....., चुपचाप चल दिये। स्वामिभक्ति की प्रतिमूर्ति, समाज चरित्र का पर्याय, कहाँ है जोधाणे की जान, मैं उसको ढूँढ रहा हूँ। कहाँ है? समाज के प्रति स्वामिभक्ति का भाव रखने वाले, अपने प्रत्येक क्रियाकलाप को समाज चरित्र से तौलकर चलने वाले, मैं उसको ढूँढ रहा हूँ।

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

समाज का आक्रोश आनन्दपाल के लिये नहीं था। न्याय के लिये राजपूत आगे आए और सुनाई नहीं हुई तो पिछले प्रकरणों में पनपा आक्रोश सम्मिलित हुआ। जसवंतसिंहजी की टिकट काटना, राजपूत मंत्रियों को किनारे करना, चतुरसिंह हत्याकाण्ड, राजमहल प्रकरण और अब राजपूतों की उपेक्षा; इससे लगा कि सरकार इस समाज की कोई परवाह नहीं करती। आक्रोश की तीव्रता का यही कारण था।

सोशियल मीडिया पर युवा वर्ग जिस प्रकार से टिप्पणियाँ करते हैं, उनमें संयम व संस्कार की कमी स्पष्ट है। इस पर नियंत्रण आवश्यक है अन्यथा हम भटक जाएंगे। सोशियल मीडिया का सदुपयोग अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकता है पर यदि दुरुपयोग हुआ तो समाज में बिखराव पैदा कर देगा जो अत्यन्त दुखदायी होगा।

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

गीता में बताया है कि श्रेष्ठ पुरुष दो प्रकार के होते हैं- 1. अवधूत कोटि के और 2. आचार्य कोटि के। अवधूत कोटि के श्रेष्ठ पुरुष अवधूतों के लिये ही आदर्श होते हैं, साधारण जनता के लिये नहीं। परन्तु आचार्य कोटि के श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य मात्र के लिये आदर्श होते हैं। जंगल में कोई पुष्प खिला और कुछ समय के बाद मुरझा गया और सूखकर गिर गया। उसे किसी ने देखा नहीं, फिर भी उसने चारों ओर अपनी सुगन्ध फैलाकर दुर्गन्ध का नाश किया ही है। इसी तरह श्रेष्ठ पुरुष से (परहित का असीम भाव होने के कारण) संसार मात्र का स्वाभाविक ही बहुत उपकार हुआ करता है। चाहे कोई समझे या न समझे।

आचार्य कोटि के श्रेष्ठ पुरुष समय-समय पर इस धरा पर आते रहे हैं और अपना काम कर जाते हैं। ऐसे महामानव को हम कर्मयोगी कहें, चाहे महापुरुष कहें या योगी।

बात पिलानी नगर की है, जहाँ पूज्यश्री तनसिंहजी पढ़ा करते थे। बिड़ला जी की तरफ से कुछ छात्रों को छात्रवृत्ति मिलती थी, जिसमें पूज्यश्री तनसिंहजी को भी तीन रुपये मासिक मिला करता था। पर एक निर्धन छात्र कमलकान्त सिंह को छात्रवृत्ति नहीं मिलती थी और उसकी छात्रवृत्ति का कोई उपाय भी नहीं था। उनकी दयनीय स्थिति पर पूज्यश्री तनसिंहजी को तरस आ गया। वे कहते हैं-''आत्मा ने मुझे झकझोर कर कहा, यह तीन रुपये जो तू ले रहा है, उस पर कमलकान्त सिंह का अधिकार है। उसकी दशा पर मेरे मन में सहानुभूति उदय हुई और मैं अपने तीनों रुपये हर माह उस दीनहीन कमलकान्त सिंह को देता गया, उसे बताया यही गया कि छात्रवृत्ति एक धनी मित्र का गुप्त दान था।''

आदर्श जीवन सिद्धान्त के अनुसार यदि दूसरे को किसी वस्तु की हमसे अधिक आवश्यकता है तो उस वस्तु का वही अधिकारी है। वही बात पूज्यश्री तनसिंहजी के दिमाग में आई और अपने को मिलने वाली छात्रवृत्ति कमलकान्त सिंह को देना अपना कर्तव्य समझा।

गीता के अनुसार कर्तव्य मात्र का नाम यज्ञ है। यज्ञ शब्द के अन्दर समस्त शारीरिक, व्यावहारिक और पारमार्थिक क्रियाएँ आ जाती हैं।

पूज्यश्री तनसिंहजी स्वयं निर्धन थे। सेठजी की तरफ से मिलने वाली छात्रवृत्ति की उन्हें भी आवश्यकता थी, पर गीता में बताया है कि संसार में वस्तु के साथ हमारा संयोग होता है और जहाँ संयोग होता है, वहीं कर्तव्य का पालन करने की आवश्यकता होती है। वस्तु का संयोग होने पर उस वस्तु में ममता न करके, उसका सद्उपयोग करना, उसको दूसरों की सेवा में लगाना, हमारा कर्तव्य है। (गीता 6/3)

नि:संदेह पूज्यश्री तनसिंहजी आचार्य कोटि के श्रेष्ठ पुरुष थे। इसलिए गीता में कही गई बात के अनुसार पूज्यश्री ने अपने को मिलने वाली छात्रवृत्ति का सही सद्उपयोग निर्धन कमलकान्त सिंह की सेवा में लगाना अपना कर्तव्य, धर्म समझा क्योंकि कमलकान्त सिंह को उन रुपयों की अधिक आवश्यकता थी।

गीता के अनुसार कर्मयोग के साधक का लक्ष्य दूसरों को सुख पहुँचाने का होता है। इसलिए मिली हुई सामग्री का त्याग करना कर्मयोगी के लिये सुगम है। गीता के साधक को चाहिए कि वह पहले से ही ऐसा मान ले कि वस्तु मेरी नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है। वस्तुओं को अपनी और अपने लिये मानने से भोग ही होता है, सेवा नहीं। वस्तुओं को अपनी और अपने लिये न मानकर सेव्य की मानते हुए सेवा में लगा देने से राग-द्वेष सुगमतापूर्वक मिट जाता है।

पूज्यश्री योगी थे। योगी का लक्ष्य दूसरों को सुख

पहुँचाने का होता है। इसलिये पूज्यश्री ने अपने को मिलने वाली छात्रवृत्ति अपने लिये न मानकर कमलकान्त सिंह की मानते हुए उनकी सेवा में अर्पित कर दी जिससे कमलकान्त सिंह को सुख व प्रसन्नता मिली और उसे लगा कि मेरा भी कोई है, जो मेरे हित-चिंतन में सदा लगा रहता है।

पूज्यश्री ने बताया कि-मेरे एक सहपाठी के माता-पिता का देहान्त हो गया। उसकी दयनीय स्थिति को देखकर उसकी पढाई के लिये मैंने नौकरी करने की ठान ली, पर छात्रावास के गृहपति ने मुझे सलाह दी कि पढ़ाई का तीसरा वर्ष मैं पूर्ण कर चुका और अब केवल एक ही वर्ष था बी.ए. में, इसलिए मुझे बी.ए. कर लेना चाहिए। उसने मुझे हिम्मत बंधाई और आर्थिक संकट के लिये सांत्वना दी। न जाने क्यों उसकी बात मान गया, अन्यथा मैं आगे कभी नहीं पढ सकता था।

गीता में बताया गया है कि कर्मयोगी अपने सुख की इच्छा का त्याग करके दूसरों को सुख पहुँचाने में लग जाता है। गीता बार-बार यही बात कहती है कि कर्मयोगी अपने लिये कुछ चाहता ही नहीं। वह हमेशा दूसरों के हित की, उनके सुख की ही बात सोचा करता है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को निमित्त बनाकर साधकों को सावधान करते हैं कि उन्हें अपनी अनुकूलता तथा सुखबुद्धि का त्याग करके कर्तव्य कर्मो को करने में बड़ी तत्परता से लग जाना चाहिये। (गीता 3/8)

पूज्यश्री ने अपने निर्धन सहपाठी के माता-पिता का देहान्त हो जाने पर अपनी पढाई बीच में ही छोड़, उनकी पढाई के लिये नौकरी करने की ठान ली। यहाँ पूज्य श्री तनसिंहजी अपने हित का, अपने सुख की इच्छा का त्याग करने जा रहे थे।

भगवान जब किसी की परीक्षा लेता है तो परीक्षा पर परीक्षा लेता ही रहता है। न जाने पूज्यश्री ने अपने जीवन में कितनी परीक्षाएँ दी होगी। ज्योंहि एक परीक्षा खत्म हुई और एक परीक्षा और।

पूज्यश्री फिर एक बार अपने हितों की, अपने सुखों की तिलांजलि देने जा रहे थे। एक निर्धन सहपाठी के एक बहन थी, जिसके एक पैर में लकवा था और वह चिंतित था कि उसके लिये कोई वर न था। पूज्यश्री कहते हैं कि सहानुभूति से मेरा हृदय भर आया। मन ही मन निश्चय कर लिया कि मैं उसी से शादी कर लूंगा, पर मेरे दूसरे सहपाठी ने मुझे मना कर दिया, कहा- 'हमारी जिन्दगी को इस प्रकार बर्बाद करने का हमें कोई अधिकार नहीं है, यह जिन्दगी हमारी नहीं है और न इस पर हमारा एकाधिकार है। यह तो धरोहर है जिसे ठीक प्रकार रखना हमारा फर्ज है।' खैर, उसकी शादी की बात और जगह बैठ गई। पूज्यश्री कहते हैं अगर वह शादी मैं कर लेता तो कोई उसे सराहता नहीं, लेकिन मैं जिस भावना से उससे शादी करने जा रहा था, उस भावना को शायद ही कोई समझ पाता।

पूज्यश्री निसंदेह कर्मयोगी थे और कर्मयोगी सदैव धर्म में जीता है। दूसरे का हित साधना अर्थात् अपने हित का बलिदान करके भी दूसरे का हित साधन करना ही अपना धर्म है।

गीता के अनुरूप ही पूज्यश्री तनसिंहजी का जीवन व्यवहार था। अपने ऊपर कोई दुख आने पर तो हर कोई उसे दूर करने की चेष्टा करता ही है, पर दूसरे को दुखी देखकर कोई विरला ही अपनी शक्ति के अनुसार उसका दुख दूर करने की चेष्टा करता है, पर ऐसे विरलों में एक पूज्यश्री तनसिंहजी थे, जो दूसरे को दुखी देखकर अपनी क्षमता अनुसार सच्ची भवना से उसका दुख दूर करने की चेष्टा करते थे। वे जहाँ भी रहे, उनके सम्पर्क में जो रहा उनके दुख दर्द को दूर करने के लिये उनकी सारी शक्तियाँ स्वत: लग जाया करती थी। ऐसे व्यक्ति को क्या कहें-सन्त, योगी, महापुरुष या कर्मयोगी।

जो दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होते हैं, वे सन्त होते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने सन्तों के लक्षणों में कहा है-''पर दुख-दुख सुख-सुख देखे पर'' (मानस 7/38/1)

(क्रमश:)

गतांक से आगे

उपासना

– स्वामी श्री यतीश्वरानन्द

प्रतिकोपासना :

जिन्हें यह प्रक्रिया भी कठिन प्रतीत हो, उनके लिये प्रतीकोपासना, अर्थात् किसी उचित प्रतीक की सहायता से पूजा करने का विधान किया जाता है। देवता की, प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि प्रतीक के माध्यम से, पूजा की जाती है। उसका उद्देश्य सीमित प्रतीक में असीम नामरूपातीत सर्वव्यापी परमात्मा का साक्षात्कार करना है। जैसा स्वामी विवेकानन्द ने कहा है : ''जहाँ स्वयं ब्रह्म ही उपास्य होता है, प्रतीक उसका केवल प्रतिनिधि-स्वरूप अथवा उसके संकेत का कारण मात्र होता है।'' प्रतीक आन्तरिक हो सकता है, जैसे उपासक का मन, बुद्धि या आत्मा, अथवा वह सूर्य, आकाश, अग्नि अथवा शब्द प्रतीक ओम् इत्यादि बाह्य प्रतीक हो सकता है। उचित पद्धति से किये गये ध्यान द्वारा बाह्य एवं आन्तर जगत में व्याप्त एवं उनका अतिक्रमण करने वाले परमात्मा का अन्ततः साक्षात्कार होता है।

जिन्हें उपासना के उपर्युक्त प्रतीक भी बहुत सूक्ष्म या जटिल प्रतीत हों, उन्हें मानवी रूपधारी प्रतिमा का उपयोग करना चाहिए। लेकिन यहाँ भी यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि मूर्ति की ईश्वर अथवा परमात्मा के प्रतीक के रूप में पूजा की जाय। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा है : ''यदि प्रतिमा किसी देवता या किसी महापुरुष की सूचक हो, तो ऐसी उपासना मुक्ति नहीं दे सकती। पर यदि वह उसी एक परमेश्वर की सूचक हो तो उस उपासना से भक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त हो सकती है।''

भारत में प्रतिवर्ष दुर्गा अथवा गणेश की, मिट्टी की मूर्तियों में पूजा होती है। उत्सव की समाप्ति नदी या तालाब में मूर्तियों के विसर्जन द्वारा होती है। एक बार दक्षिणेश्वर में विशाल काली मंदिर की निर्माणकर्ती रानी रासमणि के दामाद मथुर ने वार्षिक दुर्गा पूजा के बाद मूर्ति का परित्याग करने में असमर्थता व्यक्त की। इतने दिनों तक अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजित मूर्ति को नदी में फेंकने के विचार से उनका हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने आदेश दिया कि कोई भी मूर्ति को अपने स्थान से न हटाये, और वे एक जिद्दी बालक का सा आचरण करने लगे। उनके संबंधी तथा कर्मचारी सहायता के लिये श्रीरामकृष्ण के पास पहुँचे। श्रीरामकृष्ण ने मथुर के पास जाकर पूछा : ''क्या माँ जगदम्बा केवल मूर्ति में ही हैं? उन्हें अपने हृदय रूपी स्थायी निवास में प्रतिष्ठित करके, उनकी मृण्मयी प्रतिमा का त्याग क्यों नहीं करते?'' माँ जगदम्बा सर्वदा हृदय में विराजित हैं, जब यह विचार मथुर के मन में जागा, तो मथुर तत्काल सामान्य हो गए, तथा विसर्जन विधिवत् सम्पन्न हुआ। यह छोटी सी घटना हिन्दुओं की मूर्तिपूजा के रहस्य का उद्घाटन करती है।

भगवान् एक हैं, लेकिन उनके बहुत से रूप हैं। चूंकि पूर्ण वैभव और ऐश्वर्ययुक्त उनके रूप की पूजा करना असम्भव है, अतः हम उनका कोई एक रूप चुन लेते हैं। लेकिन विष्णु, शिव, शक्ति आदि उनके किसी सगुण रूप के माध्यम से उन तक पहुँचने के लिये भी हमें विभिन्न भौतिक, शाब्दिक अथवा मानसिक प्रतीकों की आवश्यकता पड़ती है, जिनमें से एक या अनेक को एक साथ ग्रहण किया जा सकता है। प्रतीक सत्य नहीं है। वह परमात्मा का, भावों के माध्यम से, स्मरण करने का उपाय मात्र है।

आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ कर रहा साधक किसी देवता की मूर्ति अथवा यंत्र (आदर्श का प्रतीक ज्यामितीय चित्र) जैसे स्थूल प्रतीकों की सहायता ले सकता है। प्रगति करने पर वह स्थूल सहायता को त्याग कर परमात्मा का स्मरण करने के लिये शब्द-प्रतीक का उपयोग कर सकता है। और आगे बढ़ने पर वह स्थूल तथा शब्द दोनों प्रकार के प्रतीकों को त्यागकर वैचारिक

स्तर पर शान्तिपूर्वक केवल मानसिक उपासना की सहायता से आगे बढ़ सकता है। और परमात्मा के विचार मात्र से नमक के पुतले के समान अपनी क्षुद्र आत्मा को अखण्ड चैतन्यसागर में, जहाँ उपासक-उपास्य के भेद पूरी तरह समाप्त हो जाते हैं, विलीन करने में समर्थ होने पर वह मानसिक पूजा भी त्याग सकता है।

हमारी दृष्टि सीमित है, और हम जो कुछ देखते हैं, वह सभी इसी सीमा से प्रभावित हो जाता है। हम केवल प्रतिबिम्ब ही देख पाते हैं, प्रकाश नहीं, और वह भी सीमित। हमारी बुद्धि भी संकुचित, सीमित है। हम चरम सत्य का साक्षात् अनुभव नहीं कर सकते। हमारा ज्ञान मन की ससीम उपाधियों, जिन्हें शंकराचार्य ने देश, काल और निमित्त की संज्ञा दी है, के माध्यम से ही प्राप्त होता है। प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान मन, उसकी वृत्तियों तथा कल्पनाओं द्वारा प्रभावित होता है। सारांश यह है कि हम प्रतीकों के दायरे में बद्ध हैं, जो सत्य की ओर संकेत तो करते हैं, किन्तु साथ ही उसे आवृत भी करते हैं।

लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि कई प्रकार के प्रतीक होते हैं, कुछ सत्य होते हैं, कुछ मिथ्या। मृगतृष्णा जल जैसी प्रतीत होती है, लेकिन वह एक भ्रामक दृश्यप्रपञ्च है, जिसका पानी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु लहर को सागर का सच्चा प्रतीक माना जा सकता है। क्योंकि वह उससे ही उठती है। उसके सम्पर्क में बनी रहती है और उसमें विलीन भी होती है। सागर की तरह वह भी उसी तत्व, जल से बनी होती है।

यही नहीं, उच्च और निम्न प्रतीक भी होते हैं। शब्द के अक्षर नामात्मक शब्द प्रतीक हैं, और नाम पुनः मानसिक चित्र का प्रतीक है। फिर चित्र चिंतन प्रक्रिया का प्रतीक है; और यही नहीं विचार भी उस परमसत्ता का प्रतीक बन जाता है, जिसे वह व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। किन्तु ऐसा, वह उपर्युक्त परोक्ष रूप से ही कर सकता है। सत्य तथा उसकी अभिव्यक्ति के बीच बहुतसी सांकेतिक प्रक्रियाएँ हैं। इस गहन रहस्य को भारत में अतिदीर्घकाल पूर्व समझा गया था। इसीलिए विभिन्न प्रकार की प्रतीकात्मक उपासनाओं को भारत में स्वीकार और विकसित किया गया है। ज्ञानी पुरुष बीच के सभी माध्यमों को भेदते हुए सत्य की चरम गहराई तक पहुँचे हैं और कम क्षमता वाले साधकों के लिये अपने पीछे चरणचिह्न छोड़ गए हैं, जिनका अनुसरण किया जा सके।

हिन्दू धर्म में प्रतीकों का विषय तथा देवी-देवताओं की पूजा का विषय बहुत व्यापक है। अत: हम ईश्वर के किसी न किसी रूप के साक्षात्कार के उद्देश्य से, पूजा और ध्यान के लिये वैदिक काल से आज तक प्रयुक्त उपास्य देवी-देवताओं एवं प्रतीकों में से कुछ का ही यहाँ वर्णन करेंगे।

हिन्दू धर्म के कुछ प्रतीक :

शिव की, प्रतिमा अथवा लिंग के रूप में पूजा की जाती है। कुछ भी रहा हो, वह शिवोपासकों के मन में पुरुष-लिंग का विचार कभी भी पैदा नहीं करता। उनके लिये लिंग एक अपुरुषविध, मूर्ति से भिन्न उस परमात्मा का प्रतीक है, जो रूपों में अभिव्यक्त होते हुए भी उन सभी से परे है। तांत्रिक भक्त लिंग को परमात्मा की स्त्री-पुरुषात्मक सृजन शक्ति का प्रतीक समझता है। शालिग्रामशिला एक अन्य अपुरुषविध प्रतीक है, जो विष्णु से सम्बन्धित है। विष्णु की, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज मूर्ति की अथवा उसके राम, कृष्ण आदि अवतारों की प्राय: पूजा की जाती है। तांत्रिक उपासक तथा अन्य लोग भी प्राय: यंत्र नामक ज्यामितीय रेखाचित्रों की देवता शरीर के गुह्य प्रतीक के रूप में उपासना करते हैं। कभी-कभी एक पट या द्विआयतनीय चित्र (ग्रीक ईसाई गिरजे का आईकॉन) त्रिआयतनीय मूर्ति के बदले देवता का आह्वान करने के लिये प्रतीक का काम करता है। बहुत सी उपासनाओं में जलपूरित घट अकेले अथवा अन्य प्रतीकों के साथ निराकार सर्वव्यापी परमात्मा के संकेतक के रूप में काम में लाया जाता है। अग्नि को भी अन्य प्रतीकों के स्थान पर काम में लिया जा सकता है। प्रज्वलित अग्नि को ईश्वर का शरीर मानकर आहुतियों द्वारा उसकी उपासना की जाती है।

सुसंस्कृत उपासनाओं में ओम् अथवा अन्य कोई भगवन्नाम मंत्र-प्रतीक होता है। मंत्र का शाब्दिक अर्थ है ''उच्चारण और मनन से जीव को बन्धन से मुक्त करने वाला।''

शब्द प्रतीक के रूप में ओम् अखण्ड ब्रह्म का प्रतीक है, जबकि अन्य नाम अथवा मंत्र उसी परमात्मा के खण्ड या रूप-विशेष के प्रतीक हैं। विभिन्न तांत्रिक देवताओं के विशेष-विशेष ''बीज'' मंत्र होते हैं, जिनमें उपासक के समक्ष तत्तत् ईश्वरीय रूपों को अभिव्यक्त या प्रकट करने की क्षमता का होना माना जाता है।

भगवान् के नाम, भगवान् की शक्ति के शाब्दिक रूप हैं, जिनके जप तथा अर्थ का चिंतन करने से वह शक्ति जाग्रत होती है। श्रीचैतन्य कहते हैं : ''प्रभु! आपके अनेक नाम हैं, और प्रत्येक में आपने अपनी सारी शक्ति अर्पित कर दी है।'' विभिन्न नाम परमात्मा के विभिन्न रूपों के प्रतीक हैं, जिनका जप द्वारा साक्षात्कार किया जाता है। एक ही ईश्वर के लिये अनेक नामों का प्रयोग वैदिक काल से चला आ रहा है।

ईसा-मसीह, चैतन्य या रामकृष्ण जैसे अवतारी महापुरुषों की जीवनी का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि इन सभी के लिये ईश्वर चरम सत्य था। परमात्मा उनके जीवन का केन्द्र बिन्दु था तथा अन्य सब बातें गौण थीं। तुम भगवान के किसी भी प्रतीक को चुन सकते हो, भगवान के साथ कोई भी सम्बन्ध स्थापित कर सकते हो-उन्हें अपना पिता, माता, पुत्र, मित्र अथवा पति मान सकते हैं-लेकिन सदा उसे अपना निकटतम और प्रियतम समझो। निम्नोक्त श्लोक में अभिव्यक्त प्रेम की तीव्रता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है :

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

अर्थात् ''हे देवाधिदेव! तुम ही मेरी माता हो, तुम ही मेरे पिता हो, तुम ही बन्धु और सखा भी हो। तुम ही धन और विद्या हो, तुम ही मेरे सर्वस्व हो।''

उपासना द्वारा आध्यात्मिक विकास :

ऐसे लोग हैं, जो समुचित आध्यात्मिक विकास के पूर्व ही क्रिया-अनुष्ठान का त्याग कर देते हैं। मूर्तिपूजा की आवश्यकता से ऊपर उठने के पूर्व उसके त्याग के समान यह भी बहुत गलत है। मूर्तिपूजकों की कभी निंदा न करो। मूर्तिपूजा में बहुत सार है, और प्रोटेस्टेण्ट ईसाई सम्प्रदाय उसकी उपेक्षा करके गलती करते हैं। वे आध्यात्मिक परम्परा और आध्यात्मिक जीवन के बारे में कुछ नहीं जानते। उपासक के मन में ही नहीं, बल्कि दैवी मूर्ति में भी देवता का प्राकट्य होता है। रोमन कैथोलिक मूर्तिपूजा पद्धति के मूल में भी यही भाव विद्यमान है, भले ही सदियों के दौरान ये पूजाएँ धर्मप्रवक्ताओं के द्वारा विकृत हो गई हों। हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिये, जो केवल सिद्धान्त प्रतिपादन ही नहीं, बल्कि अपना आध्यात्मिक विकास भी करना चाहते हैं, भौतिक अथवा मानसिक मूर्तियों की उपासना नितान्त आवश्यक है।

लेकिन यदि ऐसा पाया जाय कि हम सारे जीवन केवल मूर्तिपूजा ही कर रहे हैं, तो कोई गम्भीर त्रुटि है। साधना से हमारी प्रगति हो रही है या नहीं, यह सदा अवलोकन करते रहना चाहिए। प्रारम्भ में बाह्यपूजा हमारे लिये उपयोगी हो सकती है। कुछ लोग बहुत कर्मकाण्डी होते हैं और उससे बहुत आनन्द प्राप्त करते हैं। लेकिन हमें अपना सारा जीवन केवल बाह्य पूजा करते ही नहीं बिता देना चाहिए। आगे या पीछे बाह्यपूजा से हमें आन्तरपूजा तक पहुँचना चाहिए। हमें कस्तूरीमृग जैसा नहीं होना चाहिए। उसकी नाभि में कस्तूरी होती है, लेकिन वह उस मीठी सुगन्ध की खोज में भटकता रहता है और अन्त में मर जाता है। इसी तरह हम जिस भगवान् को खोज रहे हैं, वह हमारे हृदय में नित्य विद्यमान है, लेकिन हम उसे बाहर पाना चाहते हैं।

हम सदा अपने ईश्वर अथवा देवताओं की सृष्टि करते रहते हैं। हम महादेव की प्रतिमा गढ़ने का प्रयास

(शेष पृष्ठ 29 पर)

गतांक से आगे

प्रताप महान

– फारूक अहमद खान

शाही सेना के लौट जाने के बाद महाराणा ने सिरोही के राव सुरताण, जालोर के स्वामी ताजखां और अपने श्वसुर ईडर के राजा नाराणदास के साथ मिलकर गुजरात के कई स्थानों पर शाही थानों को नष्ट कर दिया और कई गाँव और शहरों को अपने अधीन कर लिया।

– मुंशी देवीप्रसाद : महाराणा श्री प्रतापसिंहजी का जीवन चरित्र पृष्ठ 26

''बादशाह अकबर स्वयं 13 अक्टूबर, 1576 को अजमेर से गोगून्दा को रवाना हुआ। गोगूंदा से अकबर ने कुतुबुद्दीन खाँ, राजा भगवन्तदास और कुँवर मानसिंह को राणा के पीछे पहाड़ों में भेजा। परन्तु महाराणा उन पर हमला ही करता रहा। अन्त में वे पराजित होकर बादशाह के पास लौट आए।'' – अबुलफजल

''वे राणा के प्रदेश में गए परन्तु उसका कुछ पता ना लगने से बिना आज्ञा ही लौट आए जिस पर अकबर ने अप्रसन्न हो उनकी ड्योढ़ी बंद कर दी, जो माफी मांगने पर फिर बहाल की गई।''

– अबुलफजल-अकबरनामा अंग्रेजी अनुवाद जिल्द सं. 3 पृष्ठ 274-75

अकबर मेवाड़ के इलाके में 6 महिने तक रहा और सारी कोशिशों के बावजूद प्रताप का या उसकी सेना का कोई ओहदेदार उसके हाथ में नहीं आया।

– अकबरनामा भाग 3, पृष्ठ 193-194

बादशाह ने फिर एक बड़ी सेना लेकर मिर्जाखाँ (खानखाना) व अन्य अफसरों को राणा पर भेजा। एक बार राजपूत सेना ने हमला किया जिसमें कुँवर अमरसिंह ने खानखाना की औरतों को बंदी बना लिया, जिनको महाराणा ने बहन-बेटी का सा सम्मान कर, प्रतिष्ठा के साथ वापस उनके पति के पास पहुँचा दिया। महाराणा के उत्तम बर्ताव के कारण खानखाना उस समय से ही मेवाड़ के महाराणाओं की तरफ सद्भाव रखने लगा।

– मुंशी देवीदास, महाराणा श्री प्रतापसिंहजी का जीवन चरित्र पृष्ठ 40

बादशाह ने फिर 15 अक्टूबर, 1578 को एक बड़ा सैन्य दल महाराणा प्रताप के विरुद्ध भेजा परन्तु वे भी महाराणा तक नहीं पहुँच सके केवल राव सुरजन हाडा के बेटे दूदा को साथ लेकर अकबर के दरबार में हाजिर हुए। – अकबरनामा जिल्द 3 पृष्ठ 355-56

इसी बीच भामाशाह के नेतृत्व में राजपूत सेना ने मालवा पर चढाई कर, वहाँ से 25 लाख रुपये और 20 हजार अशर्फियाँ लूटकर चूलिया गाँव में महाराणा को भेंट की।

महाराणा जीवन पर्यन्त पहाड़ों की चट्टानों तथा गुफाओं में अपने परिवार के सहित सुरक्षित रहे। कई अवसर पर उन्हें और उनके परिवार को समय पर खाना भी नसीब नहीं होता था। एक बार तो उनकी पत्नी और कुँवर अमरसिंह की पत्नी ने मिलकर घास के बीज की रोटी बनाई। आधी रोटी एक बच्ची के हाथ में से जंगली बिल्ली छीनकर ले गई। परन्तु इन सब प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद महाराणा ने आक्रांता से अपनी मातृभूमि का सौदा नहीं किया।

संक्षिप्त में इस संघर्ष का अंत यह हुआ कि महाराणा ने अपने छोटे से राज्य का 80 प्रतिशत भू-भाग मुगलों से दुबारा प्राप्त कर लिया। महाराणा ने एक ही वर्ष 1586 में चित्तौड़ और मांडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड़ को अपने अधीन कर लिया था।

– वीर विनोद भाग 2, पृष्ठ 164

मध्यकाल में किसी भी युद्ध में विजय तभी सम्भव थी जब शत्रु राजा वीरगति को प्राप्त हो अथवा समर्पण कर दे। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप सही सलामत मुगल सेना की पहुँच से बाहर चले गये तथा समर्पण की कोई बात ही नहीं थी। इसलिए इतिहासकारों ने न्यायसंगत रूप से हल्दीघाटी के युद्ध को अनिर्णित युद्ध की परिभाषा में सूचीबद्ध किया है।

अकबर ने साम्राज्य विस्तार के लिये जितने युद्ध किए उससे ज्यादा युद्ध उसे अपने नजदीकी रिश्तेदारों और

सेनानायकों के विद्रोह को दबाने के लिये करने पड़े। मई 1562 ई. में अकबर के दूध शरीक भाई (Foster Brother) आदम खाँ को वजीर शमशुद्दीन की हत्या का कठोर दंड देते हुए उसे दुर्ग की दूसरी मंजिल से नीचे फिंकवा दिया। अकबर ने उसके शरीर में जीवन का संकेत पाने पर उसे दुबारा दुर्ग से नीचे फिंकवा दिया। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि अकबर ने स्वयं आदम खाँ को नीचे फेंका था।

- अकबर का बहनोई और सेनापति सरफुद्दीन की बगावत 5 नवम्बर, 1562 में हुई।

ख्वाजा मुअज्जम, (अकबर के मातृ पक्ष का चाचा) द्वारा विद्रोह 1564 ई.।

- मालवा के सूबेदार अब्दुला खाँ उजबेक की बगावत जुलाई 1564 ई.।

- रानी दुर्गावती के विरुद्ध सैनिक अभियान। तथा सेनापति आसफ खाँ द्वारा विद्रोह 1565-66 ई.।

- अकबर के भाई मो. हकीम-काबुल के सूबेदार द्वारा पंजाब पर आक्रमण-फरवरी 1567 ई.।

- खान जमान तथा बहादुर खाँ की बगावत। बन्दी बनाए जाने पर शहंशाह ने उन्हें हाथी के पाँव तले कुचलवाकर मरवा डाला-मई 1567 ई.।

- चित्तौड़गढ़ के विरुद्ध फौजी अभियान 1567।

- गुजरात में मो. हुसैन का विद्रोह-अगस्त-अक्टूबर 1573।

- काबुल में मोहम्मद हकीम का विद्रोह, अकबर स्वयं काबुल पहुँचा-9 अगस्त 1581।

''असीरगढ़ के युद्ध के बाद अकबर के प्रभुत्व में कमी होने लगी। वह लगभग 45 वर्ष तक युद्ध करता रहा। जहांगीर के विद्रोह के कारण अकबर मई में आगरा लौट आए। सलीम के लगातार विद्रोह, शहजादा दानियाल की मृत्यु और अन्य घटनाओं के कारण जीवन के अन्तिम वर्षों में अकबर का मन खिन्न हो गया था.....।''

-इतिहासकार विंसेंट स्मिथ अपनी पुस्तक ''अकबर द ग्रेट मुगल''

पृष्ठ 207 से 222

अकबर की शाही सेना जो कार्य 10 वर्षों में नहीं कर सकी वह कार्य महाराणा ने एक साल में कर दिखलाया।

सन् 1585 के पश्चात् महाराणा ने आमेर की प्रमुख व्यवसायिक मंडी मालपुरा पर हमला कर दिया और उसे तहस-नहस कर उस पर अधिकार कर लिया।

- राणा रासो पद्य 458

उदयपुर आदि शहर भी महाराणा के अधीन आ गए थे परन्तु महाराणा ने अपनी राजधानी चावंड को ही रखा। महाराणा ने अपना अन्तिम राज्यकाल अपने राज्य को सुव्यवस्थित करने में लगाया।

महाराणा ने अपने जीवन के अन्तिम 9-10 वर्षों में अपने राज्य को सभी दृष्टि से सुदृढ़ करने के लिये कार्य किया।

19 जनवरी, 1597 को शिकार खेलते समय धनुष पर ''ताण'' चढाते समय दुर्घटनावश गंभीर रूप से घायल हो जाने के कारण महाराणा की मृत्यु चावंड में हो गई।

चावंड से लगभग डेढ मील दूर बंडोली गाँव के निकट महाराणा का अग्नि-संस्कार हुआ।

कुँवर अमरसिंह ने मेवाड़ की परम्परा के विरुद्ध महाराणा प्रताप की अंत्येष्टि, विधि-विधान के अनुसार स्वयं श्रुति, स्मृति, पुराण आदि शास्त्रों युक्त विधि से अपनी उपस्थिति में पूर्ण करवाई तथा मुखाग्नि स्वयं दी।

जब महाराणा के स्वर्गवास का समाचार अकबर के पास पहुँचा तब वह भी उदास होकर स्तब्ध सा हो गया। उसकी यह दशा देखकर दरबारी लोगों को भी आश्चर्य हुआ। उस समय चारण दुरसा आढा ने जो वहाँ उपस्थित था, नीचे लिखा हुआ छप्पय कहा -

गहलोत राण जीती गयो, बसण मूंद रसणा इसी।
नीसास मूक भरिया नयन, तो मृत शाह प्रताप सी।।

- महाराणा प्रताप, पृ. 186, डॉ. राजेश शुक्ला

आशय- हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु पर शाह ने दांतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आँसू टपकाये, क्योंकि तूने अपने घोड़ों को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी के आगे नहीं झुकाया।

- शहजादा सलीम का विद्रोह। स्वयं को शासक घोषित कर दिया-01 अगस्त 1601।

ईस्वी सन् 1602 में शहजादा सलीम ने अपने पिता बादशाह अकबर के खिलाफ खुली बगावत का ऐलान कर स्वयं को हिन्दुस्तान का शहंशाह घोषित कर दिया तथा इलाहाबाद में अपना दरबार भी लगाने लगा, उसने अपने नाम के सोने व चाँदी के सिक्के भी ढलवाए और अकबर के पास नमूने के तौर पर आगरा/फतेहपुरसीकरी भिजवाए। लगभग दो साल तक हरम की वरिष्ठ महिलाएँ जिनमें जोधा बाई भी सम्मिलित थी बाप-बेटे के बीच सुलह का प्रयास करते रहे।

अंत में 21 अगस्त, 1604 को जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर ने शहजादा सलीम के विरुद्ध युद्ध का ऐलान कर दिया, अकबर स्वयं इस युद्ध में शामिल होने के लिये कूच भी कर चुका था। परन्तु रास्ते में आठवें दिन, अचानक अकबर की माता का देहान्त हो जाने का समाचार पाकर वह लौट आया। कुछ समय बाद सलीम भी अपनी दादी को श्रद्धांजलि अर्पित करने का बहाना लेकर आगरा पहुँचा। जोधाबाई के अथक प्रयास से अकबर ने सलीम को क्षमा कर दिया। परन्तु 22 सितम्बर, 1605 को शहंशाह अचानक बीमार पड़ गया। 21 अक्टूबर, 1605 को अकबर ने शहंशाह बाबर की तलवार (राजसी चिह्न) सलीम को सौंप दी। अकबर की बीमारी ज्यादा बढ़ती गई। वह नीम बेहोशी (अर्द्धमूर्छित अवस्था) के हालत में बड़बड़ाया करता था कि ''शेखूं, तूने ऐसा क्यों किया''? ''शेखूं, तूने ऐसा क्यों किया''? इसी बीमारी में 26-27 अक्टूबर, 1605 की रात को अकबर का निधन हो गया।

इस बीच उसके सगे-सम्बन्धी और रिश्तेदारों ने कई अवसर पर बगावत की। अकबर के विरुद्ध ऐतिहासिक विवरण निम्न प्रकार हैं-

नोट- अकबर ने अपने शासनकाल में सबसे भयंकर भूल स्वयं को मालिक का दूत (Massanger) मानकर और दीन-ए-ईलाही धर्म चलाकर की, जिसका विवरण आगे दिया जा रहा है।

1576 ई. के बाद अकबर का ध्यान अपने साम्राज्य के अन्य इलाकों की ओर गया। क्योंकि अकबर को मेवाड़ में व्यस्त देखकर उसके रिश्ते के भाई हाकिम खाँ ने पंजाब पर आक्रमण कर दिया था। इसलिए अकबर को अपनी सेना सहित पश्चिमी दिशा की ओर जाना पड़ा। हाकिम खाँ के विद्रोह का दमन कर अकबर अपनी राजधानी लौटा, परन्तु वह हाकिम खाँ का विद्रोह कभी भी पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाया।

कलंक

बादशाह जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर (शासन 1557-1605 ई.) ने इस्लाम के बुनियादी सिद्धान्तों के विपरीत जाकर एक नया मजहब दीन-ए-इलाही स्थापित किया तथा इस धर्म के नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये जो कि इस्लाम धर्म की बुनियादी मान्यताओं के सर्वथा विपरीत थे। इस्लाम मजहब की पुख्ता मान्यता है कि ''मोहम्मद (स.अ.स.) आखिरी नबी है और मोहम्मद (स.अ.स.) के साथ ही नबुवत खत्म हो चुकी है।'' परन्तु अकबर ने इन सिद्धान्तों से बगावत करते हुए नये मजहबी रीति-रिवाजों को महत्त्व दिया। इसके उपरान्त भी मुसलमान/इतिहासकार अकबर को महान् कहते एवं लिखते हैं? नि:संदेह यह बड़ी मजहबी भूल है, परन्तु इससे भी ज्यादा विस्मयकारी यह बात है कि, हर छोटी बात पर फरमान/फतवा जारी करने वाले आजाद भारत के किसी इमाम और मुफ्ती ने कभी भी किसी को भी अकबर को महिमा-मण्डित करने से नहीं रोका और इसीलिए अकबर के नाम के आगे 'अकबरे आजम' अथवा 'मुगले आजम' जैसे अलंकरण लगाए जाते हैं। अफसोस है कि मजहब के ठेकेदारों का ध्यान इस ओर नहीं है।

अकबर द्वारा चलाए गये नये मजहब दीन-ए-इलाही को केवल 14 व्यक्तियों ने स्वीकार किया, जिनमें केवल एक हिन्दू ब्राह्मण राजा बीरबल थे। अकबर के जीवनकाल के पश्चात् मजहब दीन-ए-इलाही भी खत्म हो गया।

अकबर ने अपने साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ

धार्मिक मामलों में भी रुचि लेना शुरू कर दिया था जिसका मुख्य सूत्रधार यमन का मूल निवासी शेख मुबारक था। जिसके दोनों लड़के अबुल फजल तथा फैजी अकबर के नवरत्नों में शामिल थे।

श्री मुबारक ने अकबर को हिन्दुस्तान पर लम्बे समय तक राज्य करने के लिये यह समझाया, वह ऊपर वाले की तरफ से हिन्दुस्तान की जनता का सबसे बड़ा ''मजहबी खलीफा'' है। इसी धारणा से प्रभावित होकर अकबर ने 1579 में 'मजहर' (मजहबी मामले का सर्वोच्च निर्णायक) की घोषणा की। अकबर ने स्वयं को 'इमामे-आदिल' घोषित करवाया। - ईमाम यानि मुखिया तथा आदिल का मतलब होता है इंसाफ करने वाला। दूसरे शब्दों में मजहबी/धार्मिक मामलों में भी अकबर सर्वोच्च न्यायाधीश बन गया। मजहबनामा की नियमावली बनाने वाला यही शेख मुबारक था।

(क्रमशः)

अथर्ववेद में क्षत्रिय के लिये प्रार्थना

22-अमित्रक्षयण सूक्त

इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम्।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान् रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु।।

हे इन्द्रदेव! आप हमारे इस क्षत्रिय (शौर्यवान रक्षक) को पुत्र-पौत्रों तथा सम्पत्ति आदि से समृद्ध करें और पराक्रमी मनुष्यों में इसे अद्वितीय बनाएँ। इसके समस्त रिपुओं को प्रभावहीन बनाकर आप इसके अधीन करें 'मैं श्रेष्ठ हूँ' इसके प्रति ऐसा कहने वालों को (इसके) वश में करें।

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै।।

हे इन्द्रदेव! आप इस क्षत्रिय को जनसमूह, गौओं तथा अश्वों की सुविधाएँ पाने वाला बनाएँ और इसके रिपुओं को गौओं, अश्वों तथा मनुष्यों से पृथक रखें। यह क्षत्रिय गुणों की मूर्ति हो। इसके समस्त रिपुओं तथा राष्ट्रों को आप इसके अधीन करें।

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरसतु राजा।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य।।

यह राजा सोने, चाँदी आदि धन तथा प्रजाओं का स्वामी हो। हे इन्द्रदेव! आप इस राजा में रिपुओं को पराजित करने वालो तेजस् स्थापित करें।

अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू।
अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात् प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम्।।

हे द्यावा-पृथिवि! धारोष्ण दूध देने वाली गौओं की तरह आप इसे प्रचुर धन प्रदान करें। यह इन्द्र का स्नेह पात्र हो। (इन्द्र का प्रिय पात्र होने से वर्षा होने पर) यह गौओं, ओषधियों तथा पशुओं का भी प्रिय हो जाए।

युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते।
यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्।।

हे नर श्रेष्ठ! श्रेष्ठ गुणों वाले इन्द्रदेव को हम आपका मित्र बताते हैं। उनके द्वारा प्रेरित आपके सहयोगी, रिपु सेना को विजित करें, वे कभी पराजित न हों। जो इन्द्रदेव वीरों तथा राजाओं में आपको वृषभ के समान प्रमुख बनाते हैं, ऐसे इन्द्रदेव से हम आपकी मैत्री कराते हैं।

उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन् प्रतिशत्रवस्ते।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा भरा भोजनानि।।

(हे वीर!) आप सर्वश्रेष्ठ हों और आपके रिपु निम्नकोटि के हों। जो शत्रु आपसे प्रतिकूल व्यवहार करते हैं वे भी नीचे गिरें। इन्द्रदेव की मित्रता से आप अद्वितीय बलवान बनकर शत्रुवत आचरण करने वाले मनुष्यों के भोग-साधन, ऐश्वर्य आदि छीन लाएँ।

सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्।
एकवृष इन्द्रसखा जिगीवाञ्छत्रूयतामा खिदा भोजनानि।।

(हे राजन्!) सिंह के समान पराक्रमी बनकर, आप अपनी प्रजाओं से भोग-साधन आदि प्राप्त करें और देव व्याघ्र के समान बलशाली बनकर अपने रिपुओं को संतृप्त करें। आप इन्द्रदेव की मित्रता से अद्वितीय बलवान बनकर, शत्रुवत् व्यवहार करने वालों के धन को विनष्ट करने में सक्षम हों।

विचार-सरिता

(द्वाविंश लहरी)

– विचारक

जीवन में जब तक विद्या का प्रवेश न हुआ हो तब तक जीवन नीरस व अधूरा है। विद्या ही वह ऊर्जा है जिससे जीवन को बल मिलता है। विद्या ही वह ताकत है जिससे आप बलशाली बनते हो। विद्या ही वह प्रकाश है जिससे अज्ञान रूपी निशा की निवृति होकर ज्ञान का सूर्य उदित हो जाता है। विद्या ही वह संजीवनी है जिससे मृत्यु पर विजय पाकर व्यक्ति जीते जी अमर हो जाता है। विद्या मात्र जानकारी नहीं है, वह तो जब हमारे जीवन में उतरती है तो जीवन आनंद से भर जाता है। विद्या उसी का नाम है जो अविद्या का नाश कर दे। विद्या वह है जो नाशी तत्व से उपरामता और ग्लानि कराके अविनाशी तत्व में स्थिति करा दे।

विद्या भी दो प्रकार की है। एक अपरा-विद्या, दूसरी परा-विद्या। अपरा-विद्या से केवल जगत की जानकारी होती है जो केवल बुद्धि का विषय है। यह जानकारी हमारी बुद्धि तक ही रहती है। परन्तु परा-विद्या तो वह विद्या है जो बुद्धि से आगे हृदय देश तक उतर जाती है। वह परा-विद्या हमारे जीवन में उतरकर हमारे जीवन को मुखरित करती है, आह्लादित करती है। परा-विद्या के जानने के बाद जानना कुछ शेष रहता ही नहीं। इस विद्या को जानने वाला महात्मा परिपूर्ण बन जाता है, कृतकृत्य हो जाता है, धनधन्य हो जाता है।

अपरा-विद्या हमारी बुद्धि में उतरकर भौतिक उपलब्धियाँ करा सकती है जो सारी की सारी नाशीसत्ता है। सारा का सारा प्राकृतिक ज्ञान है। सद्शास्त्रों से लेकर वेद तक की पढ़ाई अपरा-विद्या ही तो है। यह विद्या केवल परमात्मा के अस्तित्व की जानकारी मात्र है। परमात्मा के होने को जो सिद्ध करे वह अपरा-विद्या ही कही जा सकती है। अपरा-विद्या से ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान हो सकता है। वास्तविक विद्या तो परा-विद्या ही है जो हमें परमात्मा से एकत्व होने का बोध कराती है। वहाँ जीव और ब्रह्म का एकत्व निश्चय होता है। भेद की चिज्जड़ग्रन्थि की समाप्ति और ब्रह्म का एकत्व निश्चय ही इस विद्या की विशेषता है। यह परा-विद्या अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की जननी है। इसी परा-विद्या को ही ज्ञानयोग कहा गया है। ज्ञानयोग की पूर्णता ही कर्मयोग का फल है। ज्ञानयोग के बिना कोई कर्मयोगी हो ही नहीं सकता। जिसे उचित-अनुचित का विवेक ही नहीं वह कर्म करते हुए कर्म नहीं करने वाला कैसे बन सकता है। गीता में भगवान ने अपने शिष्य को सर्वप्रथम ज्ञानयोग की बात करके आत्मा में अमरता का दर्शन कराया और उसके बाद अन्त में कहा कि अब तुम युद्ध अर्थात् स्वाभाविक कर्म करो। दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में ही भगवान ने बोलना शुरू किया। गीता यहीं से शुरू होती है। बोलते ही सर्वप्रथम यही कहा कि तुम पण्डितों की सी बातें करते हो परन्तु पण्डित तो वह है जो न तो मरे हुओं की चिंता करता है और जो अभी नहीं मरे हैं उनकी भी चिंता नहीं करता। फिर आगे आत्मा के अमरत्व की बात कही और पूरे अध्याय में ज्ञानयोग समझाया। आगे तीसरे अध्याय में भगवान कर्म की बात करते हैं।

कर्म क्या है? कर्म किसे कहते हैं? कर्म, अकर्म और विकर्म की बात कही और फिर निष्काम कर्म कैसे होता है इसकी पूरी व्याख्या बताई। भगवान ने पराविद्या या ब्रह्म-विद्या जैसी गुह्यतम बात युद्ध के मैदान में ही क्यों कही? वे चाहते तो इस विद्या का उपदेश पहले भी अपने शिष्य को कर सकते थे। किन्तु जहाँ मौत सामने खड़ी हो और विषम परिस्थिति उपस्थित हो वहाँ यथार्थ ज्ञान का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। मृत्यु के भय के कारण साधक को वृति एकाग्र करने में सुगमता रहती है

और ऐसे काल में ज्ञान का उपदेश सीधा हृदय-देश में उतर कर कल्याणकारी बन जाता है। इसलिए भगवान ने अपरा और परा दोनों प्रकार की विद्याओं की बात भलीभाँति युद्ध के मैदान में कहकर अर्जुन का मोह नष्ट किया और स्वरूप में स्थिति कराई। तभी तो अठारहवें अध्याय के अन्त में अर्जुन ने कहा- ***''नष्टो मोह: स्मृतिर्लब्धा''*** अब मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे अपनी अमर आत्मा की स्मृति हो आई है। मैं मरणोधर्मी नहीं हूँ। देह का धर्म मरण है। मेरा आत्मा तो अज, अविनाशी और सत् चित् आनंद स्वरूप है और देहआदि संसार से निर्लिप्त है। ऐसा बोध होने पर अर्जुन को भगवान ने युद्ध की आज्ञा दी है। युद्ध की परिभाषा केवल यही नहीं है कि जहाँ भौतिक अस्त्र-शस्त्रों से एक दूसरे पर विजय की आकांक्षा से लड़ा जाय, वही युद्ध है। ऐसा नहीं है यह जीवन भी युद्ध काल है। जिस प्रकार युद्ध में शूरवीरता और कौशलता की प्रमुखता है वैसे ही इस जीवन रूपी युद्ध-क्षेत्र में वीरता, धीरता और कौशलता से कालजयी बनना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता आदि दोषों पर विजय पाकर अपने साक्षीभाव में स्थित रहने की चातुर्यता कौशलता जिसमें है वही कर्मयोगी है, वही ज्ञानी है।

देह की समस्त संरचना को प्रकृति की रचना समझकर इसके होने वाले विकारों का अपने आपको साक्षी मानते हुए, घटद्रष्टावत अपने साक्षी भाव में जो स्थित रहता है वह वास्तव में ज्ञानी है। मन, बुद्धि व समस्त इन्द्रियों के विषयों को अपना विषय न मानते हुए प्रकृति के अंश में होने वाले इस व्यवहार को प्रकृति के सापेक्ष करने की कला का नाम कर्मयोग है। देह कर्म तो करे पर करते हुए भी देह के कर्मों की फलासक्ति से आप असंग रहने की कला सीख जाय तो यह उत्कृष्ट कर्मयोग बन जाएगा। जल के भीतर रहते हुए भी कमल जिस प्रकार जल के धर्मों को स्वीकार नहीं करता, ठीक इसी प्रकार ज्ञानीजन भी व्यवहार काल में कर्म करते हुए भी नि:स्पृह होकर कर्तापन के अभिमान से मुक्त रहते हैं। जब हम कर्तापन के अभिमान से मुक्त हैं तो भोक्ता भी नहीं बनेंगे। कर्तापन का अभिमान ही बन्धन का हेतु है। इन्द्रियाँ ही अपने-अपने विषय में विचर रही हैं ऐसा समझकर जो साधक व्यवहारिक जगत में सर्वहिताय, सर्वसुखाय क्रिया करता है वह वास्तव में निष्काम कर्मयोगी है। ऐसे कर्मयोगियों को संसार बांध ही नहीं सकता। वे सदैव नित्य मुक्त होकर स्वच्छन्द रूप से अपने आप पर विजय पा जाते हैं और निर्भीक व नि:शंक होकर देह की मृत्यु को साक्षीभाव से देखकर कालजयी बन जाते हैं। ऐसे परम श्रद्धेय महापुरुषों के चरणों में मेरा श्रद्धावत नमन्। ***ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!***

(क्रमश:)

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

है। अगले स्वागत के लिये हम यहाँ से विदा ले रहे हैं। मर्यादाएँ जुड़ी हैं कि चाहते हुए भी हम दृढ नहीं रह सकते पर व्यक्ति का संकल्प बहुत कुछ कर सकता है। माता मदालसा ने पति की चुनौती स्वीकार की और संन्यासी भी व योग्य प्रशासक भी संतान रूप में उनके अनुकूल पूरा वातावरण बनाकर पति को दिए।

सभी कुछ हमारी चाह के अनुकूल हो जाए, यह आवश्यक नहीं। भगवान कृष्ण के अन्तिम समय में अक्रूर जी ने पूछा, जब यादव परस्पर ही लड़ रहे थे, कि यह क्या हो रहा है, प्रभु! आप तो जा रहे हैं, हम क्या करें? भगवान ने कहा कि जीवन रहते वही करना जो मैंने किया। यही हमारे लिये भी संदेश है भगवान कृष्ण का। आज के विषैले वातावरण में परिवर्तन की संभावनाएँ केवल आप जैसे लोगों से है। इसीलिए आप अतिशय प्रिय हैं। श्रेष्ठ बनें और श्रेष्ठता को बाँटें। सेवा करें, इस भाव को बाँटें। संघर्ष क्षेत्र में जा रहे हैं, भगवान को भूलें नहीं। आत्मा का भोजन भजन होता है अत: प्रभु स्मरण सदैव बना रहे। प्रसन्न होकर जाएँ, सदा प्रसन्न रहें।

*

गतांक से आगे

गुजरात में सोलंकी कुल का शासन

संकलन कर्ता–गिरधारीसिंह डोभाड़ा

मालवा विजय :

मालवा विजय सिद्धराज जयसिंह का महान पराक्रम माना गया है। सिद्धराज ने मालवपति यशोवर्मा को हराकर 'अवंतिनाथ' का विरुद धारण किया था। सिद्धराज जब भगवान सोमनाथ की यात्रा पर था तब यशोवर्मा ने सिद्धराज की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर पाटण पर आक्रमण किया। उस समय पाटण में सान्तू मंत्री पाटण की देखभाल कर रहा था। सान्तू मेहता और अन्य मंत्रियों ने यशोवर्मा को वापस लौट जाने को समझाया तब यशोवर्मा ने कहा कि तुम्हारे राजा की यात्रा का पुण्य मुझे दे दो तो मैं वापस लौट जाऊँगा। तब सान्तू ने यशोवर्मा के पाँव धोकर हाथ में पानी लेकर सिद्धराज की यात्रा का पुण्य यशोवर्मा को देने के प्रतीक रूप में अंजली दी। यशोवर्मा वापस मालवा की ओर लौट गया। यशोवर्मा समझ गया होगा कि सिद्धराज की अनुपस्थिति में पाटण लेना व्यर्थ जायेगा क्योंकि जब सिद्धराज आयेगा तो उसके सामने वह टिक नहीं पाएगा। हो सकता है सिद्धराज उसे हराकर उसका वध भी कर दे, इसलिए यही उचित रहेगा कि मंत्रियों के आग्रह पर वापस लौट जाए, इससे अपना हाथ ऊपर रहेगा। सिद्धराज जब सोमनाथ की यात्रा से लौट आया तो उसे पूरी खबर मिली और वह क्रोधित हो गया। तब सान्तू मेहता ने राजा को समझाया कि यदि पानी से अंजली देने से किसी का पुण्य चला जाता हो तो अन्य पुण्यशाली व्यक्तियों का पुण्य मैं आपको अर्पण करता हूँ। उसने राजा को यह भी समझाने का प्रयास किया कि शत्रु सैन्य को अपने देश पर आने से किसी प्रकार रोका जाय तो पहले वही उपाय करना चाहिए। लेकिन सिद्धराज को संतोष नहीं हुआ और यशोवर्मा को पाठ पढाने के लिये मालवा पर आक्रमण करने को सेना को कूच करने का आदेश दे दिया।

मालवा राजा यशोवर्मा को हराकर जिन्दा पकड़ने की इच्छा से राजा सिद्धराज सेना लेकर उज्जैन की ओर निकल पड़ा। गुजरात की सेना पड़ाव डालती हुई तेज गति से आगे बढ रही थी। रास्ते में कई भीलों ने उसकी सहायता की। सिद्धराज स्वयं सेना के साथ उज्जैन पहुँचा। उसने क्षिप्रा नदी के पास पड़ाव डाला।

सिद्धराज भेष बदलकर रात्रि चर्या करने अकेला निकल पड़ता था। इसलिए कोई अन्य जानता न हो, वह बात भी उसे मिल जाती थी। लोग इस बात से अनजान थे इसलिए मानते थे कि सिद्धराज में कोई गुप्त विद्या है जिससे वह हर एक बात जान जाता है। लोग उसे विद्याधर मानते थे। एक रात्रि सिद्धराज भेष बदलकर निकला उस समय मध्य रात्रि को कुछ योगिनियों के साथ काली हाथ में हथियार लेकर सिद्धराज को मारने के लिये उसकी ओर आई। सिद्धराज को युद्ध के लिये ललकारा। युद्ध की चुनौती पाकर कौन क्षत्रिय हथियार नहीं उठाता। सिद्धराज ने काली और योगिनियों के साथ युद्ध किया। सिद्धराज ने उन सबको हरा दिया और बोला,-'हे भद्र माता! तुम नारी हो और मैं क्षत्रिय हूँ। क्षत्रिय किसी नारी का वध नहीं करता। यदि मैं तुम्हारा वध करूंगा तो मेरी माँ का दूध लज्जित होगा।' सिद्धराज के ये विजयपूर्ण वचन सुनकर काली ने कहा,-'हे सिद्धराज! तेरी हिम्मत, धैर्य और सत्व से मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। मैं स्वयं काली हूँ। मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तू इस युद्ध में यशोवर्मा को पराजित करेगा।' इस प्रकार वर देकर माता काली अन्तर्धान हो गई। यशोवर्मा ने जब यह जाना तो वह भयभीत हो गया और उज्जैनी से भागकर वह धारागढ के दुर्ग में जा बैठा। सिद्धराज ने उज्जैनी पर आक्रमण कर उसे ध्वस्त किया और सेना लेकर धारागढ की ओर बढा।

सिद्धराज सेना लेकर धारागढ पहुँचा और गढ को घेर लिया। लम्बे समय तक घेरा रहा पर दुर्ग को तोड़ने

के चिह्न दिखाई नहीं देते थे। मंत्रियों से परामर्श किया कि कैसे दुर्ग को तोड़ा जाए और इसकी जिम्मेवारी मुंजाल मंत्री को सौंपी गई। उसने गुप्तचरों से पता लगाया कि किले के दक्षिणी द्वार पर एक साथ जोर लगाया जाए तो टूटने की संभावना है। शामळ नामक महावत को आदेश दिया कि यश:पटह हाथी से दक्षिणी द्वार पर टक्कर लगाई जाय। यश:पटह हाथी सबसे बलवान और महाकाय था। हाथी को मदिरा पिलाई गई। महावत ने हाथी को उकसाया और द्वार की ओर हाँका। हाथी पूरे जोश में था। उसने इतने जोर से द्वार पर टक्कर लगाई कि द्वार टूट गया। अति जोर से टक्कर लगाने के कारण वह हाथी भी मर गया। द्वार के टूट जाने पर पाटण की सेना किले में घुस गई और युद्ध में यशोवर्मा को हराकर पकड़ लिया। उसे रस्से से बांधकर काष्ट के पींजरे में डालकर पाटण लाया गया। मालव विजय से सिद्धराज की कीर्ति बढ गई और 'अवंतीनाथ' का विरुद धारण किया।

सिद्धराज का मालव विजय बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा। उज्जैनी कूच समय रास्ते में सिद्धराज ने पंचमहल के भीलों को अपनी सत्ता तले ले लिया। मालवा का बहुत बड़ा विस्तार, मालवा और गुजरात को जोड़ता मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा और चित्तौड़ के किले पर अपनी सत्ता स्थापित की। मालवा की गिनती सिद्धराज के गुजरात के 'अवंति मंडल' के रूप में होने लगी थी। सिद्धराज ने 'अवंति मंडल' के रूप में उसका प्रशासन महामात्य दादक के पुत्र महादेव को सौंपा।

सिद्धराज और सिन्धुराज :

सिंध प्रदेश के सुमरा राजा सिन्धुराज को हराकर अपना राज्य विस्तार सिंध प्रदेश तक किया। सिद्धराज ने किराडु वंश के परमार राजा सोमेश्वर पर प्रसन्न होकर सिन्धु राजपुर का शासन दे दिया। सोमेश्वर ने पाटण का सामन्त पद स्वीकारा। सिद्धराज ने मालवा के परमारों को हराकर उनकी सत्ता को छिन्न-भिन्न कर दिया लेकिन किराडु वंश के परमारों के साथ सहृदयता दिखाई जिससे वे सोलंकी राजाओं के हमेशा के लिये सामन्त बने रहे।

सिद्धराज और चन्देले :

मालवा पर विजय पाने से मालवा पूर्ण रूप से पाटण के अधीन हो गया था। अब सिद्धराज का राज्य विस्तार बुन्देलखण्ड की सीमा तक हो गया था। बुन्देलखण्ड की राजधानी महोबक नगर में चंदेल राजा मदनवर्मा सत्ता पर था। बुन्देलखण्ड हीरा, माणक, पन्ना आदि रत्नों से भरा विस्तार था। मदनवर्मा के राज्य में खूब समृद्धि थी। अद्‌भुत समृद्धि के कारण मदनवर्मा विलास प्रिय हो गया था। एक बार एक परदेशी चारण पाटण में सिद्धराज की सभा में आया। उसने चंदेला राजवी मदनवर्मा की समृद्धि और विलास प्रियता की बहुत प्रशंसा की। मालव विजय के बाद सिद्धराज के राज्य की सीमा बुन्देलखण्ड तक पहुँच चुकी थी अत: संघर्ष की संभावना तो थी ही, मदनवर्मा की समृद्धि के बखान ने आग में घी का काम किया। सिद्धराज ने गुप्तचरों द्वारा मदनवर्मा की समृद्धि की जाँच करवाई और सत्यता जानकर उसे जीतने का मन बना लिया। सेना लेकर प्रयाण किया। महोबकनगर से आठ कोस दूर पड़ाव डालकर मदनवर्मा को अपना आधिपत्य स्वीकारने या युद्ध करने को कहलाया। उस समय मदनवर्मा अपनी रानियों और दासियों के साथ बाग में आमोद-प्रमोद में व्यस्त था। सिद्धराज का संदेश सुनकर हँसा और कहा कि यह वही सिद्धराज है, जो धारागढ जीतने के लिये बारह वर्ष तक घेरा डाले पड़ा था। उसने संदेशवाहक से कहा,-'सिद्धराज को जाकर कह दो कि यदि तुम्हें धन की आवश्यकता है तो जितना धन मांगो, हम दे देंगे और यदि हमारे नगर या भूमि चाहिए तो युद्ध करना अनिवार्य है।' उस समय गुजरात में सिद्धपुर में रूद्र महात्म्य और पाटण में सहस्रलिंग तालाब का निर्माण कार्य चल रहा था। सिद्धराज को धन की भी आवश्यकता थी। उसने सोचा युद्ध में दोनों ओर के सैनिकों की अत्यधिक मृत्यु होगी, अत: संधि करके धन ही क्यों न लिया जाय। सिद्धराज ने मदनवर्मा से स्वर्ण मुद्राएँ मांगी जो दी गई और संधि कर ली। सिद्धराज स्वर्ण मुद्राएँ लेकर पाटण को लौट आया।

सिद्धराज और कन्नोज :

कन्नोज में गहड़वाल राजा गोपीचन्द सत्ता पर था। गहड़वाल और चंदेलों के बीच बार-बार संघर्ष होता था। अब बुन्देलखंड और गुजरात की सीमा एक हो गई थी अत: चंदेलों द्वारा मालवा पर आक्रमण की संभावना बनी रहती थी। राजनैतिक व कूटनैतिक दृष्टि से दुश्मन का दुश्मन अपना मित्र, अत: सिद्धराज ने गहड़वालों से मित्रता कर ली।

सिद्धराज और कल्याणी के चालुक्य :

उस समय कल्याणी का चालुक्य राजा विक्रमादित्य छठा था। वह बहुत पराक्रमी था। विक्रमादित्य के सेनापति ने गुजरात पर चढाई की। सिद्धराज की सेना ने विक्रमादित्य को हराया। उज्जैनी के युद्ध में योगिनियों और माता काली को सिद्धराज ने जिस तलवार से हराया था, वह तलवार उसे कल्याण कटक के राजा परमदी की ओर से भेंट में मिली थी। कल्याणी के विक्रमादित्य चालुक्य ने सिद्धराज के दरबार में अपना प्रतिनिधि भेजा था। सिद्धराज की आन दक्षिण तक फैली हुई थी।

सिद्धराज और बाबरा भूत :

सिद्धराज की बाल्यावस्था में राजमाता मीनळदेवी राजकार्य संभालती थी। उस समय सारस्वत मंडल में बार्बरिक अपने जैसे आसुरी स्वभाव के लोगों की टोली बनाकर आतंक फैला रहा था। सरस्वती नदी के आसपास के प्रदेश में रात्रि को निकलना खतरे से खाली नहीं था। रात्रि के घोर अंधेरे में वह कहाँ छुपा है और कब हमला कर दे, कहा नहीं जा सकता था। वह इतना भयानक था मानो राक्षसों जैसी मायावी शक्ति-विद्या जानता हो। लोग उसे बाबरा भूत कहते थे। सरस्वती नदी के किनारे बसी सिद्धपुर नगरी पवित्र नगरी थी। ऋषिगण वहाँ होम-हवन किया करते थे। सिद्धराज जब युवा हुआ और राज्य की बागडोर संभाल ली तो ऋषियों ने उससे शिकायत की कि बाबरा हमारे यज्ञ में विघ्न डालता है, रात्रि में आकर त्रास देता है, हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। यह सुनते ही जयसिंह आग बबूला हो गया। ऋषियों को ढाढस बंधाया कि अब आप निर्भीक रहें, मैं स्वयं बाबरा से लड़ने आऊँगा। सिद्धराज जयसिंह रात्रि को भेष बदलकर खड़ग लेकर अकेला ही बाबरा के स्थान की ओर चला। बाबरा का स्थान घने जंगल में था जहाँ दिन में भी जाने से डर लगता है ऐसी झाड़ियों से घिरा था। मृत प्राणियों के सड़े हुए शरीर के माँस के टुकड़ों से दुर्गन्ध आ रही थी। जयसिंह ने बाबरा को ललकारा। ललकार सुनते ही बाबरा आँखों में अंगारे बरसाता सा स्थान से बाहर आया। हुंकार भर कर हाथ में खड़ग लेकर जयसिंह की ओर बढा। काले भैंसा भयानक दीख रहा था। बड़े-बड़े पहलवानों के भी छक्के छूट जाएं ऐसा भयानक था बाबरा जबकि जयसिंह ने तो अभी जवानी में प्रवेश ही किया था। बाबरा और जयसिंह के बीच भयंकर युद्ध हुआ। दोनों उछल-उछलकर एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे और प्रति द्वन्द्वि का वार चुका रहे थे। बाबरा इतना बलशाली था कि उछलकर जहाँ उसका पैर पड़ता था, वहाँ गड्ढा हो जाता था। उसका खड़ग भी बड़ा था। दोनों के शरीर से खून और पसीना बह रहा था। बाबरा ने एक ऐसा वार किया जिससे जयसिंह की तलवार के दो टुकड़े हो गए। जयसिंह संभलकर दो कदम पीछे हट गया पर अब वह निहत्था हो गया था। बाबरा उछलकर जयसिंह पर वार करता लेकिन जयसिंह स्फूर्ति से कूदकर दो कदम आजू-बाजू हो जाता था और बाबरा के वार को विफल कर देता था। बाबरा ने दाँत कचकचा कर एक ऐसा प्रहार किया जिसे जयसिंह ने तो उछलकर चूका दिया पर वार भूमि पर पड़ी चट्टान पर पड़ा जिससे बाबरा की खड़ग भी टूट गई। अब दोनों निहत्थे हो गए थे। अब एक दूसरे पर प्रचण्ड वेग से मुष्ठि प्रहार व पैरों से प्रहार करने लगे। प्रचण्ड प्रहारों से दोनों के मुख से ऊँहकार निकल रही थी। बाबरा भीमकाय था जबकि जयसिंह के तो मूंछ भी पूरी नहीं प्रकटी थी। बाबरा जयसिंह को उठाकर दूर फेंक देता था जबकि जयसिंह तो बाबरा को उठा भी नहीं सकता था। बाबरा ने जयसिंह को उठाकर एक चट्टान पर फेंका पर सद्भाग्य से वह

उस चट्टान पर नहीं गिरा। जयसिंह स्फूर्ति से उठ खड़ा हुआ और तीव्र गति से आकर बाबरा पर लात का प्रहार किया। वह प्रहार उसके उदर पर लगा और वह जमीन पर गिर पड़ा। बाबरा खड़ा हो पाये उससे पहले ही जयसिंह उस पर चढ बैठा और प्रचंड मुष्ठि प्रहारों से बाबरा बेहोश हो गया। जयसिंह ने अपनी कटि से बंधी रस्सी से बाबरा को बांध लिया और घसीटने लगा। जयसिंह बोला,-'मैं पाटण पति जयसिंह तुझे घसीटकर नगर में ले जाऊँगा। और सूर्योदय होने के बाद नगर चौक में नगर जन की उपस्थिति में तेरा सिरच्छेद करूंगा।' बाबरा की पत्नी पिंगलिका यह सब देख रही थी। उसने जयसिंह से क्षमा प्रार्थना की और बाबरा को छोड़ देने की विनती की। उसने कहा-मैं बाबरा की धर्मपत्नी आपको वचन देती हूँ कि बाबरा हमेशा आपकी सेवा में उपस्थित रहेगा और आप उसे जो कार्य निर्दिष्ट करेंगे वह पूरे मनोयोग से और पूरी शक्ति से करेगा। जयसिंह ने बाबरा से वचन लेकर उसे मुक्त कर दिया। बाबरा ने जयसिंह को बहुत धन दिया। जयसिंह ने जो भी मुश्किल से मुश्किल कार्य उसे करने को दिया, उसने पूरा किया। वह इतना शक्तिशाली था कि जयसिंह को अपने कंधों पर उठाकर तीव्र गति से ले जाता था। जैसे हनुमान राम और लक्ष्मण को उठा लेते थे। दोनों की जोड़ी बनी। लोग उन्हें बाबरा भूत और सधरा जेसंग के नाम से पहचानने लगे। उनके विषय में अनेक रोमांचक कथाएँ चलती। सिद्धराज ने बाबरा को वश में करके 'बर्बरिक जिष्णु' का विरुद धारण किया। *(क्रमशः)*

पृष्ठ 6 का शेष

क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति : दुर्गादास राठौड़

जोधा रणछोड़दासजी ने दुर्गादासजी को सुरक्षित निकल जाने का आग्रह करते हुए निवेदन किया कि-

रण दुरगा ने आखियो, सुणो सूर सिरताज।
दिल्ली भारत मो भुजाँ, तोह मुरद्धर लाज।।

अर्थात् दिल्ली की यह लड़ाई मेरी भुजाओं पर है, मैं बादशाही सेना से टक्कर लूंगा, उसे रोकूंगा और मर मिटूंगा। दुर्गादास! तू यहाँ से सकुशल निकल जा, ताकि मारवाड़ की लाज रख सके। तेरा उपयोग मारवाड़ की रक्षा में होगा, तू यहाँ प्राण मत गमा। पर वीरवर दुर्गादासजी का उत्तर था,-'मैं क्षत्रिय हूँ, सामने आए हुए देव दुर्लभ युद्ध को छोड़कर पीठ नहीं बता सकता। यदि ईश्वर को मेरे ही हाथ से मारवाड़ की रक्षा करानी मंजूर है तो मैं इस भीषण युद्ध में से बचकर अवश्य निकल जाऊँगा।' और ऐसा ही हुआ, दुर्गादासजी मात्र सात सैनिकों के साथ मुगल सेना को लम्बी दौड़ और भयानक मुठभेड़ों से थका कर बच निकले।

तत्पश्चात मारवाड़ आकर सन् 1681 तक छापामार युद्ध प्रणाली द्वारा मारवाड़ मेवाड़ एवं ढूंढाढ़ स्थित विभिन्न मुगल थानों एवं शाही सेना को लूटते रहे व हमला करते रहे। सोजत, बिलाड़ा, खेतासर, नाडोल आदि अनेक स्थानों पर उनकी मुगल सेना एवं उनकी समर्थक सेना से मुठभेड़ें हुई। शूरवीरता पूर्वक हर मुठभेड़ में वे शत्रु सेना को नाकों चने चबाते रहे।

सन् 1681 से लेकर सन् 1686 तक शाहजादा अकबर के साथ उनका दक्षिण प्रवास बिना शौर्य के संभव नहीं था। अनजान प्रदेश में जगह-जगह स्थित दुश्मन सेना के पड़ावों से कहीं बचकर, कहीं संघर्ष कर लगातार पाँच वर्ष तक अपने साथ-साथ शहजादा की भी रक्षा करना एवं उसे सुरक्षित ईरान रवाना कर सकुशल मारवाड़ लौटना शूरवीरता के बिना संभव नहीं था।

दक्षिण से लौटने के बाद भी संघर्ष जारी रखा। औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त सन् 1708 में जयपुर एवं जोधपुर की सम्मिलित सेना ने सांभर पर आक्रमण में शाही सेना से मुकाबला किया। दुर्गादासजी ने 70 वर्ष की आयु में भी इस युद्ध में अद्भुत रणकौशल का परिचय दिया। लगभग दो हजार मुगल सैनिक इस युद्ध में मारे गए एवं युद्ध के मौदान से भागती हुई मुगल सेना का पाँच कोस तक पीछा किया गया। इस प्रकार दुर्गादास जी का पूरा जीवन गीता में वर्णित क्षत्रिय के प्रथम गुण शौर्य से ओतप्रोत था। *(क्रमशः)*

पुष्कर युद्ध में मेड़तिया राठौड़ राजसिंहजी का बलिदान

– हरीशचन्द्रसिंह आलनियावास

मुगल बादशाह औरंगजेब के समय शाही आज्ञानुसार मारवाड़ में जब मुगल सैनिकों द्वारा मंदिर एवं देवालय आदि ध्वस्त किए जाने लगे तब रियाँ ठाकुर प्रतापसिंहजी के पुत्र राजसिंह मेड़तिया ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मारवाड़ में स्थित सब मस्जिदों को तोड़कर मुगलों को मार-मार कर न भगाऊँगा तब तक पलंग पर सोना छोड़ कर धरती पर लेटूँगा तथा अन्न का त्याग कर केवल दुग्धपान करूंगा। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने हेतु राजसिंहजी ने अपने पिता प्रतापसिंह गोपालदासोत एवं बाघसिंह चांदावत व मेड़तियों के साथ मेड़ता के लिये प्रस्थान किया। वहाँ मुगल फौजदार सार्दुल खाँ नियुक्त था। मेड़तिया राठौड़ों ने मालकोट का घेराव किया पर अन्दर प्रवेश की राह नहीं निकली। तब जयसिंह चांदावत व मेड़तियों ने कोट के मुख्य द्वार पर कांटे एवं ईंधन एकत्रित कर उसमें आग लगा दी जिससे कोट के दरवाजे जल गए। कोट के अन्दर प्रवेश कर सार्दुल खाँ को कैद कर लिया। तत्पश्चात् राजसिंहजी आदि मेड़तिया राठौड़ों ने मेड़ता में भ्रमण कर वहाँ स्थित मस्जिदों को नष्ट किया व मुगलों को मार भगाया। ऐसे मेड़तिया राठौड़ों ने अगस्त 1679 में मुगलों को मेड़ता से खदेड़ कर वहाँ अपना अधिकार जमा लिया।

औरंगजेब को जब यह विदित हुआ कि शाही अधिकारियों को निष्कासित कर न केवल जोधपुर अपितु मेड़ता व सिवाना पर भी राठौड़ों ने अधिकार कर लिया है, तो वह चिंतित हुआ। उसने जोधपुर पुन: हस्तगत करने हेतु सरबुलन्द खाँ के नेतृत्व में विशाल सेना गठित की। इधर अजमेर के सूबेदार तहब्बर खाँ को जब यह समाचार मिला तो उसने ससैन्य पुष्कर की ओर प्रस्थान किया। राजसिंह राठौड़ मेड़ता से आलनियावास आए। मेड़तिया और उदावत राठौड़ों ने परस्पर विचार-विमर्श कर तहब्बर खाँ का रास्ता रोककर पुष्कर को बचाने का निश्चय किया। राठौड़ आलनियावास में एकत्रित हुए और पुष्कर के लिये प्रस्थान किया।

इतिहासकार बांकीदास के अनुसार राजसिंहजी मेड़तिया आलनियावास से रथ में बैठकर अपने भाई-बन्धुओं के साथ पुष्कर की ओर युद्ध करने हेतु चले। उदावत राठौड़ों ने अनुरोध किया कि हम सब राठौड़ अश्वारूढ हैं अत: अकेले आपको रथ में बैठना शोभा नहीं देता। आप भी घोड़े पर सवार होवें। इसमें हम सब राठौड़ों की गरिमा बनी रहेगी। राजसिंहजी ने उदावतों से निवेदन किया कि मैं उदर रोग से पीड़ित हूँ अत: मेरे लिये अश्वारूढ होना कष्टकर है। इस पर उदावत राठौड़ों ने मेड़तियों का साथ छोड़ दिया। अन्तत: राजसिंहजी रथ से उतरकर घोड़े पर आरूढ हुए एवं कहा,-''तुर्कों को खत्म कर अपने स्वामी महाराज अजीतसिंहजी के लिये मस्तक चढाने का शुभ अवसर पुष्करराज ने मुझे एवं मेरे भाइयों को ही दिया है। पुष्करराज! मेरी प्रबल इच्छा है, आपके पवित्र जल के दर्शन कर इसकी पवित्रता की रक्षा हेतु प्राण उत्सर्ग करूं।''

मेड़तिया राठौड़ वाहिनी पुष्कर पहुँची एवं 21 अगस्त, 1679 को पुष्कर के बारह जी के मंदिर के आगे शत्रु सेना से मुकाबला किया। तीन रोज तक घमासान युद्ध हुआ। तीरों, बन्दूकों से लड़ते-लड़ते तलवार, बर्छी एवं कटारी की नौबत आ गई और दोनों तरफ लाशों के ढेर लग गये। मेड़तिया राठौड़ों ने इस युद्ध में अद्भुत वीरता का परिचय दिया एवं शत्रुओं का संहार करते हुए पुष्करराज की रक्षा की।

इस युद्ध में राजसिंहजी पुत्र प्रतापसिंहजी; राठौड़ अचलदास; राठौड़ गोकुलदासजी पुत्र प्रतापसिंहजी; रूपसिंहजी पुत्र प्रतापसिंहजी; रामसिंहजी; हिम्मतसिंहजी उर्फ अरीसिंहजी (प्रतापसिंहजी के पौत्र व गोकुलदासजी के पुत्र, इनके वंशजों को नैणियाँ ठिकाना जागीर में मिला; सुन्दरदासजी, जगतसिंहजी पुत्र रामचन्द्रसिंहजी; चतुरसिंहजी (जगतसिंह के भाई); केसरीसिंह आदि प्रमुख राठौड़ों ने वीरगति पाई।

: दोहा :

राजड़, अचलो, गोकलो रूपो सरसर ढाल।
रामो, हिम्मतो, सुन्दरो, बलबत जोधा बाल।

एक अन्य दोहे में राजसिंहजी का महत्त्व बताया है-

सूजा जिसो नहीं कोई शेखो।
राजड़ जिसो नहीं कोई राठौड़।

अब कहाँ है?

– श्यामसिंह छापड़ा

क्षत्रिय धर्म, कर्म एवं भक्तिभाव के प्रभाव ने हमारी संस्कृति को महत्ता प्रदान की। कर्तव्य पालन से सन्मार्ग विरोधी भूधरों का गर्व दमन कर उन्हें रज में परिवर्तित करने वाले इसी संस्कृति के वाहक थे। क्षत्रिय-संस्कृति का विश्व व्यापक प्रकाश फैला। इस संस्कृति के पालकों के आस-पास अंधकार का चिह्न तक नहीं रहा। ऐसी महान् संस्कृति और उस संस्कृति के पोषण करने वालों की आज की स्थिति देखकर स्वाभाविक प्रश्न उठता है- वह अब कहाँ है?

काल के यज्ञ कुण्ड में लीन हो गई, यही उत्तर सूझता है। कालचक्र से विद्या, तेज, प्रताप आदि का ह्रास हो गया। फिर भी कुछ न कुछ तो अवशेष अभी भी है। अवशेष को डूबते हुए का सहारा कह सकते हैं लेकिन मात्र सहारा ही नहीं चाहिए, पार भी लगना है। तब अधोगति की ओर अग्रसर कर्तव्य पालन की भावना को, सांस्कृतिक विशिष्टताओं को रोककर दिशा परिवर्तित करनी होगी। ऊर्ध्वगति पर अग्रसर करना होगा। हमारी प्राचीन संस्कृति के कारण ही समाज ने हमको मान दिया है। परन्तु अब यदि उसका तिरस्कार किया जाता रहा तो अवशेष भी नहीं बचेगा। अवशेष पर आई हुई राख को हटाकर शोलों को प्रज्वलित करना होगा। कर्तव्य निष्ठा और हमारी आदर्श संस्कृति का बीजारोपण करना होगा। अंकुर का पोषण करना होगा।

हमने अपने कर्तव्य का तिरस्कार कर दिया तभी तो कहा है,-

धर जीण धासक धूजती, शासक रही निशंक।
वो ही जाति दासक भई, अइज विधना अंक।।

जिस वीर क्षत्रिय जाति की धाक से पृथ्वी कांपती थी, जो निशंक भाव से शासक मानी जाती थी, ऐसी इतिहास प्रसिद्ध जाति आज पथ विचलित होने से दास बन गई है, विधाता तेरा यही लेख था। आज उस महान जाति की कैसी दुर्दशा हो रही है,-

जग रखवारा जो रहा, बिरदाला धर बींद।
ताळा में जड़िया तिका, निंदाळा वश नींद।।

धर्म की अधर्म से रक्षा करने वाले, दुखियों का त्राण करने वाले, शरणागत रक्षक के महान विरद को धारण करने वाले, जग रखवाले वीर आज तालों में जड़े हुए, निद्रा के वशीभूत हो बेसुध हो पड़े हैं। कितनी सोचनीय दशा है यह। तभी कहा गया है,-

खगधारा सामी चढी, उर न चढी आतंक।
जिकी बहादुर जातड़ी, पड़ी थरहरे पंक।।

कर्तव्य पालन हेतु तलवारों की तेज धारा के सम्मुख जिस जाति ने चढने में ही जीवन की सार्थकता समझी और जिसके निडर मन को किसी प्रकार का भय छू तक नहीं सका, वही वीर जाति आज अधोगति के दलदल में फँसी हुई भय से थर-थर काँप रही है। क्या हम हमारी महान कौम के लिये यही सब कुछ सुनते रहेंगे? यदि ऐसी दशा देखकर आँखों में कुछ खार पनपता है तो उसे कर्म में परिवर्तित करना होगा। क्या करें?

शक्तिशाली बनना होगा। शक्ति संगठन में निहित होती है। यह आज का युग ही संगठन का है। इसलिए संगठित होना होगा। संगठित हम हो क्यों नहीं पा रहे, इस पर गंभीरता से विचार करें तो व्यक्तिगत स्वार्थ ही वह मुख्य कारण है जो संगठन की बजाय परस्पर फूट का दलदल फैलाता है। विगत इतिहास का अन्तरावलोकन करें तो स्पष्ट होगा कि पतन का कारण यह फूट ही रही है। इसलिए व्यक्तिगत स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ में परिवर्तित करना होगा, तभी सच्चा संगठन उभरेगा। एकता का इसीलिए महत्त्व बताया गया है,-

गुण गण यद्यपि है घणा, सहजे करन सुधार।
एका जिस्यो न एक है, उन्नति रो आधार।।

इसलिए बन्धुओं! संगठन के सूत्र में बंधना है। ऊँच-नीच का भेदभाव भूलकर अपनी मर्यादा में रहकर शृंखला बद्ध होने की परम आवश्यकता है।

नशे की प्रवृति से वैसे तो पूरा देश पीड़ित है, पर हमारे समाज की स्थिति भी सोचनीय है। नये-नये नशे तो पनप ही रहे हैं पर शराब ने सबसे ज्यादा पाँव पसारे हैं। यह स्वास्थ्य नाशक तो है ही, बुद्धि नाशक भी है। किन्तु हमने तो जैसे शराब को प्राणों की औषधि मान रखा है। कोई भी सम्प्रदाय, संत, महात्मा, पैगम्बर क्यों न हो, सभी ने नशे की निन्दा की है। इसे शर+आब अर्थात् शैतान का पानी बताया है। आर्थिक रूप से देखें तो इसने परिवारों की सम्पत्ति लुटा दी है, ऐसे अनेकों उदाहरण मिल जाएंगे। मानसिक तौर पर हानि होती है, स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। अंगद और रावण के बीच रामचरित मानस में हुए संवाद में शराबी को भी मरा हुआ बताया है,-

कौल कामबस कृपिन बिमूढा,
अति दरिद्र अजसी अति बूढा।
सदा रोगबस संतत क्रोधी,
बिष्णु बिमुख श्रुति संत विरोधी।
तनु पोषक निन्दक अघ खानी,
जीवत सव सम चोदह प्रानी।

उपरोक्त चौदह प्राणियों को मरे समान बताया गया है, जिसमें शराबी और काम के वशीभूत होने वाले व्यक्ति को भी शव के समान माना है। शराब के वशीभूत होने से सर्व सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं,-

वर्षों के तप तीर्थ अरु धर्म, कर्म, व्रत दान।
पल में होते नष्ट हैं, सेवन से मद्यपान।।

विवाह आदि सामाजिक उत्सवों में आजकल अत्यधिक दिखावा करने की परिपाटी चल पड़ी है। अपनी सामर्थ्य से अधिक खर्च होडा होड में करते हैं। यह सब धन का दुरुपयोग है। धन के अपव्यय से आर्थिक रूप से कमजोरी आती है और अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यक्ति कोल्हू के बैल की तरह लगा रहता है। वह फिर समाज की क्या सोचेगा और समाज के लिये क्या कर पाएगा। इसलिए अपने सामर्थ्य से बाहर जाना उचित नहीं।

अपना प्रमाद त्याग कर जागने हेतु आह्वान है-

निज दुर्दशा पर आज भी क्यों ध्यान तुम देते नहीं।
अत्यन्त ऊँचे से गिरे हा! अब भी तुम चेते नहीं।।
अब भी न आँखें खोलकर क्या तुम विलोकोगे कहो।
अब भी कुपथ की ओर से मनको न रोकोगे कहो।।
वीरो उठो! अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो।।
रघु-राम भीष्म तथा युधिष्ठिर सम न हो जो ओज से।
तो वीर विक्रम से बनो, विद्यानुरागी भोज से।।

जागरण का आह्वान है। कर्तव्य को समझना होगा। कर्तव्य पथ पर चलने से ऊर्ध्वगति पकड़ जाएंगे। संगठन में शक्ति है, पर यदि वह कुपथ पर चले, तो अधोगति है। कर्तव्य पथ पर चले तो ही उन्नति का मार्ग है। श्री क्षत्रिय युवक संघ कर्तव्य मार्ग पर चलने वाले संगठन की ही साधना है। कर्तव्य पथ पर संस्कारी व्यक्ति ही चल सकता है, इसलिए संस्कार निर्माण से साधना प्रारम्भ होती है। छोटे स्वार्थ को बड़े स्वार्थ के लिये त्याग देने पर ही व्यक्तिगत स्वार्थ सामाजिक स्वार्थ में रूपान्तरित होता है। संघ यही अभ्यास है। इस अभ्यास पर चलते रहने से किसी प्रकार का व्यसन हमें भटका नहीं सकता और व्यक्ति न्यूनतम आवश्यकताओं में अपना जीवन जी कर अपनी शक्तियों को समाज सेवा में प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार की साधना से गुजर कर हमारी प्राचीन विशिष्ट संस्कृति को अपना सकें ताकि किसी को यह कहने का अवसर ही न मिले कि-'अब कहाँ है?'

*

सत्याश्रय हीन मृतप्राय: प्रथाओं को अतीत गौरव एवं श्रद्धास्पदता के नाम पर जीवित रखना उस रोगी के कष्ट की अवधि को बढाना है, जो सड़ेगले अतीत के विष से पीड़ित है।

- डॉ. एस. राधाकृष्णन

चांग घोड़ी के लिये

– स्वामी सच्चिदानन्द

प्राचीन समय में संन्यासी और गढवी-चारण ज्यादातर परिव्राजक जीवन जीते थे। परिव्राजक जीवन का मतलब है-बिना कोई न्योता गाँव-गाँव भ्रमण करते रहना। जो लोग निमंत्रण मिलने पर जाते हैं वे मान-पान व धन पाते हैं। मान-पान व धन के लिये घूमने वाले सुख-साहबी तो भोग सकते हैं मगर जीवन के अति मूल्यवान अनुभव नहीं भोग सकते न भोगा सकते।

संन्यासी का ध्येय धर्म-प्रचार का होता है। धर्म-प्रचार का अर्थ सम्प्रदाय प्रचार नहीं। संन्यासी का कोई संप्रदाय या बाड़ा नहीं होता। बाड़ा हो, वहाँ संकुचितता होगी। संन्यासी संकुचित नहीं होता। ब्रह्म की कोई मर्यादा नहीं होती अत: उसके प्रचारक भी सीमित नहीं होते। संन्यासी भिक्षा-भोगी है मगर दक्षिणा-भोगी नहीं। दक्षिणा-भोगी ब्राह्मण होता है जो दक्षिणा-भोगी होगा वह दुष्टों के पास भी जाएगा। उसको वो दुर्जनों की दक्षिणा भी मीठी लगती है। कई बार वह सज्जनों की दक्षिणा से बड़ी होती है। धन से बिके जाने से दक्षिणा से बिके जाना अधिक नीच माना जाता है। धन से तो वेश्या और वकील भी बिके जाते हैं। उनको सत्य, न्याय या धर्म से कोई लेना-देना नहीं होता। मगर जो दक्षिणा से बिके जाते हैं वे तो पण्डित, सन्त, महात्मा के उज्ज्वल रूप में पूजनीय बनकर अपने पाँव पुजवाते हैं। उनका सौदा धन के सौदे से अधिक हानिकारक हो जाता है। करुणा ही समझें कि सही परिव्राजक आजकल लगभग नहीं रहे हैं। उसका दुष्परिणाम धर्म भुगत रहा है।

गढवी-चारण आजीविका के लिये घूमते रहे। वे दक्षिणा के लिये नहीं घूमते, भेंट, बखशीस, ईनाम ढूंढते रहते हैं। भेंट, बखशीस व ईनाम केवल दिलावर लोग ही देंगे। ऐसे दिलावर कई बार दरिद्र भी होते हैं। दिलावरी और दरिद्रता का मेल ब्रह्मा की करुण-सृष्टि ही मानो। मगर इस करुण सृष्टि से कभी-कभी अद्‌भुत इतिहास का सृजन होता है। ऐसा इतिहास धनवान मगर कंजूस बनियों का नहीं होता।

प्रतिदिन गाँव-गाँव में घूमने वाले को नये-नये अनुभव होते रहते हैं। जीवन अनुभवों से ही गढा जाता है। जो लोग सुख-सुविधाओं का व्यसनी बनकर घर में ही पड़े रहते हैं वे अनुभव शून्य होते हैं। जो अनुभव शून्य हैं वे चाहे महा पण्डित हों या नगर सेठ हों, अनगढा ही रहते हैं। पत्थर की अनगढता से मनुष्य की अनगढता बड़ी पीड़ादायक हो जाती है। नर्कवास बेहतर मगर अनगढों के साथ गाँव या घर में रहना अच्छा नहीं।

सन् 1745 की बात है। तब हलवद के शासक थे गजसिंहजी। राजा यदि पराक्रमी होता है तो शौर्य का इतिहास रचेगा। ये कवि व कलाकार लोग राजा को अमर बना देते हैं। केवल घटनाओं से अमर नहीं हो सकता। घटनाओं को लोक-प्रसिद्धि देने से अमरता आती है। कवि और कलाकार उस जमाने में लोक-प्रसिद्धि के वाहक थे। प्रसिद्धि की भूख सबको होती है। त्यागियों को सबसे ज्यादा होती है। लोक-प्रसिद्धि की भूख कवि कलाकारों को आकर्षित करती है। उससे दोनों का काम हो जाता है। एक की भूख संतुष्ट होती है, दूसरे की आजीविका चलती है। वैसे तो सारा संसार परस्पर के पोषण के आधार से ही चलता है।

एक दिन हलवद के राजा गजसिंहजी के दरबार में मारवाड़ से एक चारण कवि आया। चारण-गढवी बिना बोले नहीं रह सकता। बुलंद गले से आकाश को गुंजित किए बिना वह रह नहीं सकता। चारण ने रोजाना गाये जाते दोहे गा-गा कर राजा को प्रसन्न कर दिया। अधिकतर गढवी लोग प्रसंगानुसार नाम जगह बदल कर वो ही दोहे गाते रहते हैं। उसमें उनका दोष भी नहीं कहा जाता। रोजाना नया-नया कहाँ से लाएँ? कलाकार और कथाकार अधिकतर तय ढंग से गाते रहते होते हैं।

रोजाना भर्तृहरि का खेल होता हो तो वो ही संवाद बोला जाएगा। रोजाना भागवत कथा होती हो तो शुकदेव और परीक्षित के ही संवाद बोले जाएँगे। वाणी और वो ही संवाद सुनकर श्रोताओं को अरुचि न हो तब ही आश्चर्य।

राजा ने कविराज (चारण का सम्मानीय संबोधन) को बहुत सम्मान देकर आवभगत की गई। चतुर परिव्राजक को प्रथम सत्कार से यजमान की जन्म कुण्डली (स्वभाव) का पता लग जाता है। स्वभाव जान लिया तो उनके सम्बन्ध से पछतावा नहीं होगा। बिना स्वभाव जाने सम्बन्ध जोड़ने वाले बाद में कहते हैं-'हमने आपको ऐसा नहीं माना था।'

राजा और कविराज दोनों एक दूसरे से इतना घुलमिल गए कि एक वर्ष बीत गया पर पता ही न चला। जिनका जीवन तारीख, वार और घण्टों-मिनटों के कार्यक्रम से सख्त जुड़ा रहता है, वे बिना हार्ट अटैक के शायद ही होंगे। शायद आज भी कुछेक अतिथि डेरा डालते होंगे। डेरा का अर्थ है-यदि मान-पान, सुख-सुविधा मिलती है तो जाने का नाम भी नहीं लेना। ऐसे डेरा-जीवी अतिथि विदा नहीं होते, उनको रवाना करना पड़ता है।

व्यक्ति नजदीक आए तो उसको मित्र कहते हैं। बिना विश्वास नजदीक नहीं आया जाता। राजा के नजदीक पहुँच गये चारण ने देखा कि राजा किसी गहन चिंता में खोए हुए रहते हैं। चतुर को चिंता होगी ही। जवाबदारी और चिंता सगी बहनें हैं। एक हो तो दूसरी होगी ही। जो लोग बेजवाबदार भरा जीवन जीते हैं, उनको लोग मस्तराम कहते हैं। मस्तराम मस्ती में तो रहेंगे, मगर वे किसी लोक-समस्या या राष्ट्र-प्रश्न को सुलझाएगा नहीं। समस्याओं से विमुख होकर ही तो वे मस्तराम बाबा बने हुए हैं।

एक दिन गढवी ने एकान्त में राजा का विश्वास जीतकर चिंता का कारण पूछा। कुछ लोग अपनी ही चिन्ताओं से घिरे दुर्बल होकर मर जाते हैं। तो कुछ लोग चिंता कराने वाली चिनगारी को लेकर घूमते रहते हैं और यहाँ-वहाँ चिंता लगाते रहते हैं। बहुत कम लोग पराई चिंता के निवारण हेतु रतजगा करते रहते हैं। ऐसे लोग धन्य हैं।

राजा ने अपनी चिंता का कारण बताया-'कविराज! मेरा एक प्रण पूर्ण नहीं हो रहा है। उससे मैं बहुत ही चिन्तित रहता हूँ। राजपूत का लड़का प्रण के लिये जीये और प्रण के लिये मरे। आप तो समझदार हैं।' फिर तो राजा ने दिल खोलकर सारी बात बताई। 'चौटीला के ठाकुर शैलार खाचर के पास चांग नाम की लक्षमूली घोड़ी है। मुझे वह बहुत भा गई है। मैंने बार-बार उनसे घोड़ी माँगी है मगर वे ना ही बोलते हैं।'

बनिया व्यापार करे, लाभ होता हो तो सगे पुत्र का भी सौदा कर डाले। राजपूत व्यापार नहीं जानता। जिसको व्यापार नहीं आता हो उसके जीवन में लाभ का गणित नहीं होता और जहाँ लाभ का गणित नहीं होता वे ही टेकी रख सकते हैं। ऐसे टेकी का ही इतिहास होता है। नफाखोरों की संगमरमर की समाधियाँ तो होती हैं मगर पाळिया (कीर्ति-स्तम्भ) नहीं होते। संगमरमर की समाधि को पूजने वालों से ऐसे कीर्ति-स्तम्भों की पूजा करने वाली प्रजा महान होती है। हालांकि वे होंगे बहुत कम मगर दृढव्रती होते हैं।

'जो कोई मुझे वह चांग घोड़ी ला देगा उसको मैं एक लाख कौरी (एक चलन) और बीस सांती (एक सांती का अर्थ है सौ बीघा) की जमीन इनाम में दूंगा' गजसिंहजी ने ऐलान भी कर दिया। 'गढवी सोच में पड़ गया। बारह-बारह महिनों से मैं जिनका अनाज खा रहा हूँ, मस्त रहता हूँ, उनकी चिंता यदि मैं दूर न करूं तो मैं गढवी नहीं।' कविराज ने राजा को वचन दिया,-'छः महिने में वह घोड़ी आपके घुड़साल में ला दूँगा। आप निश्चिन्त हो जाइये। यदि वादा पूरा नहीं करता तो मुझे गढवी नहीं, भांड भवाया (नीच जाति) का मानना।' कहकर गढवी हलवद से विदा हुआ।

दिवस का प्रारम्भ कौन किस तरह से करता है, उस पर उसके दिवस का हिसाब निकाला जा सकता है। कोई ब्राह्मण या जति-जोगी बड़े सवेरे उठकर प्रभु स्मरण के साथ स्नानादि से निवृत होकर संध्या वन्दन में ध्यान में बैठ जाए तो समझना कि उसका दिन धन्य बन गया। कोई

किसान जल्दी प्रभात वेला में हल लेकर खेत पर जाए, सूर्योदय से पहले-पहले आधा खेत खड़ (जोत) डालता है तो समझ लेना कि उसके घर में अखूट अन्न भंडार का वास होगा। कोई बनिया-व्यापारी रात को देर से सोकर जल्दी उठता है और दुकान खोल देता है तो समझ लेना कि उसकी दुकान चलेगी। कोई क्षत्रिय शराब पीकर सोए व सूर्योदय के बाद उठे और उठते ही घरवाली से झगड़ा करने लगे तो समझ लेना कि उसके घर से लक्ष्मी जी नाराज होकर चली जाएगी। मजदूर, कारीगर धंधे के लिये जल्दी जगकर दौड़ते नहीं हैं तो समझ लेना कि वह किसी ब्याज खाऊ बनिया का कर्जदार हो जाएगा।

कहा जाता है कि सुबह पति को जल्दी जगाने वाली उसकी देवी-पूजक पत्नी ने श्राप दिया-'भगवान तुम्हें किसान का जन्म दे।' कारण पूछा तो बोली कि प्रभात की मीठी नींद में सारी दुनिया मजा लेती हो तब किसान बिस्तर छोड़कर, आँखें मसलता बैल को लेकर खेत जाए। उसके जैसा दुखी और कौन होगा? हमारा जीवन धन्य है कि पहर दिन चढने पर भी बिस्तर नहीं छोड़ते। सब अपनी-अपनी रीति से जीते हैं और वे जहाँ हैं, वहीं उन्हें सुख है।

मगर जिनको शारीरिक श्रम नहीं करना है, कमाई की कोई चिंता नहीं है। निश्चित आय पर जीवन दिया जा रहा है ऐसे राजदरबारियों का प्रभात देर से ही होगा। जगते ही कसूंबा-पानी। जहाँ चाय-कसूंबा रोजाना लिया जाता है वहाँ बिना बुलाए बन्धाणी आ जाते हैं। बन्धाणी कठिन परिश्रम नहीं कर सकते। निश्चित आय श्रम-जीवन को खत्म कर देती है। निठल्ले लोगों का ज्यादा समय तास-चौपड़ या बिरादरी में बीत जाता है। राजपूत ठाकुर होंगे वहाँ बिरादरी होगी ही।

चौटीला के ठाकुर आपा शैलार ने अपनी डयोढी में बिरादरी जमाई है। सब बन्धाणी गप मार रहे हैं। इतने में वह चारण मालदान आ पहुँचा। भारत में कपड़े और बोलने के ढंग से जाति पहचानी जाती है। भारत में चिट्ठी लिखकर, समय, दिनांक पूर्व में निश्चित करके कोई मेहमान नहीं आता। जब चाहे आ जाए। आने वाला यजमान की सुविधा-दुविधा की शायद ही सोचेगा। उस जमाने में होटलों में ठहरने-ठहराने की पश्चिमी परम्परा हमारे यहाँ नहीं थी। शैलार गढवी को पहचान गए। उन दिनों राजपूत गढवी-चारणों को देखकर प्रसन्न होते थे। अपने यश को बिरदाने वाला सबको अच्छा लगता है। निंदक किसी को प्यारा नहीं लगता। उसमें भी खाता जाए और खोदता जाए ऐसे नीच लोग तो किसी को अच्छे नहीं लगते।

गढवी के सम्मान में सब खड़े हो गए। हाथ फैला-फैला कर 'राम-राम' किया और मन से सत्कार किया। मन से मिला सत्कार अतिथि को सवासेर खून चढाता है। ऐसी बिरादरी दो पहर को भोजन का वक्त हो तब तक जमी रहती है। ज्यों-ज्यों खाने का वक्त होता जाय, सब एक-एक करके अपने घर जाएंगे, खाए और सोए। फिर से शाम को वही जमाव। आय की चिंता विहीन निठल्ला जीवन बिरादरी-जीवी न बने तो और क्या बने? पश्चिम में इस तरह की बिरादरी नहीं होती क्योंकि वहाँ कोई निठल्ला नहीं होता। कोई निश्चित आय होती नहीं। रोजाना कमाओ और खाओ। नहीं कमाना तो भूखे रहो। केवल रविवार को उनके पास समय होता है। भारत में तो कइयों को रोजाना रविवार ही होता है।

आपा शैलार के वहाँ गढवी जम गया। मीठा बोला आदमी सबको भाता है। गढवी की नजर उस चांग घोड़ी पर है। उसको अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी है। प्रतिज्ञित यदि अधूरी प्रतिज्ञा के साथ मरता है तो वह अवगतिया (दुर्गति-नीच योनि) होगा। गढवी चिंता करता रहता था-'क्या किया जाए, चांग कैसे हथियाई जाए।' उधर प्राण से भी प्यारी चांग की सुरक्षा के लिये शैलार घोड़ा साल में ही सोता था। लोगों की नजर में बसी हुई चीज को बहुत ही संभाल के रखना पड़ता है और उसमें भी किसी राजा या दबंग की नजर में आ गई चीज को तो बहुत ही संभालना पड़ता है। सयाना बनिया औरों की नजर पड़े ऐसी कोई चीज न तो रखेगा न उपयोग में लेगा।

साढे पाँच महिने बीत गये, अब वादा पूरा करने

के केवल पन्द्रह दिन ही बचे हैं। गढवी की चिंता बढ गई। 'अब क्या किया जाए?' एक दिन मौका मिल गया। जो ताक में रहता है उसको कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। रात को गढवी घुड़साल में दबे पाँव गया। चांग पर हाथ फिराया। हाथ फिरवाने की आदी स्नेह-भूखी चांग को अच्छा लगा। स्नेह-भूखा आदमी हो या पशु स्नेहाधीन हो ही जाएगा। गढवी सावधानी से घोड़ी पर चढा। घोड़ी के मुँह पर चौकड़ा लगा दिया। घोड़ी को बाहर निकाली इतने में तो पास में ही सोए हुए शैलार जग गये। उन्होंने हांक दी-'ए! कौन है?' सवार हुए गढवी ने कहा-'आपा! राम-राम! मैं चांग के लिये ही आया था, अब चांग को लेकर हलवद जा रहा हूँ। राम-राम मेरे बापू।' कहकर घोड़ी दौड़ा दी।

शैलार खड़े हो गए, शोर मच गया। जो उपस्थित थे वे सभी काठी जल्दी से अपने-अपने घोड़े पर चढकर चांग के पीछे दौड़े। शैलार उसी घोड़ी की बछेरी पर चढकर दौड़ा। चांग के नजदीक शैलार पहुँच गए। वे चाहते तो भाले से गढवी को बींध डालते मगर उन्होंने सोचा-ठेठ मारवाड़ से मुट्ठी बाजरे के लिये आए इस चारण की हत्या मेरे हाथ से हो, यह शोभास्पद नहीं होगा। बोले-'कविराजा! जाओ मैंने आपको जीवन दान और चांग घोड़ी दोनों दिए।'

काठियों के घोड़े धीमे पड़े। लोट गए। गढवी तो सूर्योदय से पहले हलवद पहुँच गया। राजा गजसिंहजी की घुड़साल में घोड़ी बांध दी। राजा गढवी से मिले। राजा की प्रतिज्ञा पूरी हुई। वे धन्य हो गए। राजसभा में कविराज का बहुमान हुआ। एक लाख कौरी और मानसर गाँव की बीस सांती जमीन भेंट में दी। सभी चारण केवल जीभ जीवी नहीं होते। कुछेक पराक्रमी भी होते हैं। उसका परिचय मारवाड़ी गढवी ने दिया।

बात खत्म हो गई। नहीं! नहीं! अभी बाकी है। राजा गजसिंहजी ने अपनी घुड़साल में चांग घोड़ी बांधने की प्रतिज्ञा पूरी करने के बाद सामने चलकर चोटीला जाकर शैलार को घोड़ी वापस दे दी। तो काठी आपा शैलार ने चांग से भी सवाई, ऐसी उसकी बछेरी गजसिंहजी को भेंट में दी। दोनों ओर से कड़ुवाहट-मीठापन में बदल गई।

*

पृष्ठ 12 का शेष

उपासना

करते हैं, और वह एक कुरूप बन्दर की सी बन जाती है। यदि हमें सही जानकारी न हो तथा उसे जीवन में अभिव्यक्त करना भी न जानें, तो परिणाम एक कुरूप बन्दर जैसा होता है। यही खतरा है।

मूर्तिपूजा जीवन्मुक्त पुरुष के बन्धन तथा पुनर्जन्म का कारण होती है। अत: संन्यासी को हृदयस्थ परमात्मा की उपासना करना चाहिए, तथा बाह्यपूजा त्याग देनी चाहिए।

यह बात उन्नत साधकों के लिये कही गयी है। इसका यह अर्थ नहीं कि सभी को मूर्तिपूजा त्यागकर सीधे निराकार के ध्यान से प्रारम्भ करना चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण बात परमात्मा को अपने हृदय के अन्तरतम प्रदेश में, अपनी आत्मा में खोजना है। आध्यात्मिक जीवन एक सीढ़ी के समान है। हमें एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ना चाहिए। पहले हमें यह पता लगाना चाहिए कि हम कहाँ खड़े हैं, अन्यथा प्रगति सम्भव नहीं है। हम बाह्यपूजा, मंदिरों में जाना आदि से भले ही प्रारम्भ करें, लेकिन हमें अधिकाधिक अन्तर्मुखी होकर परमात्मा को उसके वास्तविक धाम, हमारी आत्मा में खोजना चाहिए।

(क्रमश:)

जीवन के रंगमंच पर जब सुख सामने आता है, तब दुख नेपथ्य में रहता है, और जब दुख आगे है, तब सुख पीछे है। दोनों अभिनेता बारी-बारी से इस जीवन अभिनय में साथ-साथ खेलते रहते हैं। शायद दुख का पार्ट हमेशा बड़ा होता है और सुख का पार्ट हमेशा छोटा, पर यह मुमकिन नहीं कि कोई एक भी अकेला रहे।

- राजा राधिकारमण प्रसादसिंह

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

अपनी बात

संसार में अधिकतर लोग आज असंतुष्ट नजर आते हैं। अधिक से अधिक पाना चाहते हैं। जब तक हम और अधिक पाने की भाषा में सोचेंगे, तब तक संतोष मिल ही नहीं पाएगा। पाने की भाषा से ही असंतोष पैदा हो रहा है। जब तक कहेंगे क्या पाऊँ, तब तक असंतुष्ट ही रहेंगे। 'जो है' उसका उत्सव मनाने में ही संतोष है। 'जो नहीं है' उसको पाने की वासना में, तृष्णा में असंतोष है। ऐसा तो बहुत कुछ है जो हमारे पास नहीं है। अगर उसको पाने के लिये हम चले तो हम चलते ही रहेंगे, चलते ही रहेंगे, पूरा तो कभी हम पा ही नहीं सकेंगे। तब संतुष्ट तो हम कभी हो ही नहीं पाएंगे। असंतोष ही हमारे पूरे जीवन की कथा और व्यथा बनी रहेगी।

जरा विचारें, जो है वह भी कम नहीं है। हमें जीवन मिला है, इस जीवन के लिये क्या हमने कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया, कृतज्ञता का भाव आया? यह जीवन कोई खरीदने की वस्तु तो है नहीं। यदि खरीदा जा सके तो हम कुछ भी मूल्य चुकाने को राजी हो जाएंगे। भगवान ने हमें ये आँखें दी, ये जलते हुए दीये दिए। इन आँखों से हमने जगत का कितना सौंदर्य देखा है। सुबह का सूरज देखा, रात में तारे निहारे। कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया कि कैसी अद्भुत आँखें तुमने दी? कैसा चमत्कार है आँख, मगर धन्यवाद नहीं दिया। कानों से कितना संगीत हमने सुना है, कभी प्रभु के प्रति कृतज्ञता में झुके? हमें यह संवेदनशील हृदय दिया है, इसके लिये परमात्मा के चरणों में प्रार्थना के, पूजा के दो आँसू गिराये?

संतोष को तो इस तरह समझें कि जो कुछ मेरे पास है, वह मेरी पात्रता से अभी भी अधिक ही है। मेरी योग्यता से अभी भी ज्यादा है। न मेरी ऐसी योग्यता है, न मेरी ऐसी पात्रता है, बस परमात्मा की कृपा की बरसात ही है यह। ऐसी जो प्रतीति है, उसका नाम संतोष है। जिसके पास संतोष है, उसे और मिलेगा।

जीसस ने एक बात कही, जो अनूठी है, तर्कातीत है। उन्होंने कहा कि जिसके पास है, उसे और दिया जाएगा और जिसके पास नहीं है, उससे वह भी छीन लिया जाएगा जो उसके पास है। बड़ा उल्टा वचन है। उलटबांसी है। यह कोई बात हुई? यह कोई न्याय हुआ कि जिसके पास है उसे और दिया जाएगा, और जिसके पास नहीं है उससे और छीन लिया जाएगा। यह तो बड़ा अन्याय मालूम होता है। लेकिन यह अन्याय नहीं, यह जीवन का परम नियम है। क्योंकि जिसके पास है, उसकी ही क्षमता बढती है और लेने की। वह और द्वार खोलता है, वह और आतुर हो जाता है। वह और उत्सुक हो जाता है, वह और अभीप्सु हो जाता है और जिसके पास नहीं है वह और सिकुड़ जाता है। वह इतना सिकुड़ जाता है कि जो है वह भी उसके भीतर से निकल जाने के लिये आतुर हो जाता है।

हमारे पास यदि संतोष है तो हमें और वरदान मिलेंगे, रोज-रोज वरदान मिलेंगे। और हमारे पास यदि संतोष नहीं है तो सिर्फ असंतोष, शिकायत, रोना और हमेशा दुख की कथा ही रहती है, तब हम सिकुड़ जाएंगे। जो हमारे भीतर है वह भी खो जाएगा।

मनुष्य का मन ही ऐसा है कि वह हर चीज से असंतुष्ट है। जरा समझें कि कोई असंतुष्ट रहता है तो लाभ क्या हुआ, असंतोष बढता ही चला गया। मौत आ जाएगी एक दिन और असंतुष्ट ही जीये और असंतुष्ट ही मर जाएँगे। अत: अब दिशा बदलें। उस दिशा का नाम है संतोष। जो है इतना ही बहुत है। इतना भी क्यों है, यह आश्चर्य है। मैंने अर्जित तो किया नहीं, मेरी पात्रता नहीं। तुमने दिया, यह तेरी भेंट है! मैं कृतज्ञ हूँ। जितनी यह कृतज्ञता गहरी होगी, उतनी ही परमात्मा की अनुकम्पा बरसेगी। इतना मिला हुआ है, वह अहंकार के कारण दिखाई नहीं पड़ता। इसीलिए संघ की साधना में अहंकार को परिवर्तित किया जाता है और न्यूनतम आवश्यकताओं में जीना सिखलाया जाता है।

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
1.	बाल शिविर	12.8.2017 से 13.8.2017	भीलवाड़ा, महाराणा कुंभा छात्रावास।
2.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	31.8.2017 से 3.9.2017	आंजना महादेव, भीलवाड़ा–देवगढ रोड पर।
3.	प्रा.प्र.शि.	31.8.2017 से 3.9.2017	मडिया (जालोर) जालोर से रामसीन होकर, सिरोही से कालन्द्री होकर, रेवदर से जसवंतपुरा होकर मडिया पहुँचें। घुटेश्वर महादेव मंदिर शिविर स्थल।
4.	प्रा.प्र.शि.	31.8.2017 से 3.9.2017	कोलर (पाली) जलेटी माता मंदिर। जोजावर–देसूरी मार्ग पर। जोजावर व मारवाड़ जंक्शन से बस उपलब्ध।
5.	प्रा.प्र.शि.	1.9.2017 से 3.9.2017	नरोडा, अहमदाबाद स्टेशन से 10 कि.मी.।
6.	प्रा.प्र.शि.	1.9.2017 से 3.9.2017	पडुस्मा (गुजरात) चामुण्डा माता मंदिर। विसनगर माणसा हाईवे, विकास चौराहा से 5 कि.मी. दूर।
7.	प्रा.प्र.शि.	1.9.2017 से 4.9.2017	बरजांगसर (बीकानेर) श्री डूंगरगढ से कातर की बसें 9, 11 व 1.30 बजे।
8.	बाल शिविर	2.9.2017 से 3.9.2017	बीकानेर, नारायण निकेतन।
9.	प्रा.प्र.शि.	2.9.2017 से 4.9.2017	मोरचन्द (गुजरात)
10.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	सगरां, देचू से 3 कि.मी. दूर, जिला–जोधपुर।
11.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	बूढेश्वर महादेव भूतगाँव (सिरोही) जावाल से 4 कि.मी. दूर।
12.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	संस्कृत विद्यालय, सिवाड़ा। धोरीमन्ना–सांचोर रोड़ पर स्थित।
13.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	आशापुरा माता मंदिर, नाडोल। रानी, पाली, देसूरी, सादड़ी, बाली से सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ। पाली–उदयपुर मेगा हाईवे पर स्थित।
14.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	करगचिया (घाटोल) बांसवाड़ा–जयपुर– नेशनल हाईवे 113 से 2 कि.मी. अन्दर।

15.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	वणवासा (डूंगरपुर) साबला विजवामाता जी रोड़ पर आसपुर।
16.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	जालेला, मातेश्वरी विद्यालय। शिव से जालेला पहुँचें।
17.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	धनवा (संत भोलाराम जी मंदिर) मिठोड़ा-सिणधरी रोड़ पर।
18.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	थोब (कीकाजी बावजी का मंदिर) बालोतरा-शेरगढ मेगा हाईवे पर स्थित।
19.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	पारासर फलसूंड पोकरण से सुबह 7 बजे से हर घण्टे बस, बाड़मेर से बस।
20.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	बीठे का गाँव रा.उ.प्रा.वि., नाचना से बीकमपुर, बीकमपुर से नोख, पोकरण फलौदी से बाप, बाप से नोख हर घण्टे बस-नोख से साधन की व्यवस्था।
21.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	बैनाथा, तहसील बीदासर (चूरू)।
22.	प्रा.प्र.शि.	14.9.2017 से 17.9.2017	सनाई-जोधपुर से धुन्धाड़ा मार्ग पर स्थित है।

राजेन्द्रसिंह बोबासर
शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

पूर्ण समर्पणता

द्रोपदी को भरी सभा में सभी विद्वजनों के समक्ष नंगा करने का प्रयास किया जा रहा है। द्रोपदी हाथ जोड़कर सभी से प्रार्थना कर रही है। परन्तु पितामह भीष्म, पाण्डव, धृतराष्ट्र आदि कोई भी उसकी पुकार को सुन नहीं रहे हैं।

अन्तर्यामी भगवान कृष्ण इस समय अपनी पत्नी सत्यभामा से वार्तालाप कर रहे हैं। सत्यभामा ने भगवान कृष्ण से कहा कि आपकी सखी की दुर्दशा हो रही है और आप प्रेम से बैठे हैं। भगवान ने कहा-'सत्या! मैं क्या करूँ वह मुझे बुला ही नहीं रही है।'

दुशासन द्वारा साड़ी खींचते-खींचते जब साड़ी का अन्तिम छोर आने लगा तब द्रोपदी ने पुकारा, भगवान दौड़े-दौड़े आए और द्रोपदी को नंगा होने से बचा लिया। गीता में भगवान कृष्ण ने बार-बार अर्जुन को यही कहा-तुम तो कर्तव्य करो,बाकी सब मुझ पर छोड़ दो।

जब मैं हूँ तब हरि नाहीं।
जब हरि है तब मैं नाहीं।
प्रेम गली अति सांकड़ी, जी में दो नहीं समायी।